कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

Year 12, Issue 47
July-Sept., 2015

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR - PUBLISHER : SNEH THAKORE (LIMKA BOOK RECORD HOLDER)

संपादन व प्रकाशन
स्नेह ठाकुर
लिम्का बुक रिकॉर्ड होल्डर

वर्ष १२ - अंक ४७, जुलाई-सितम्बर २०१५

मैं और तू दो तो नहीं

पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि

मेरे देश
तेरा चप्पा-चप्पा मेरा शरीर है
तेरा जल मेरा मन है
तेरी वायु मेरी आत्मा है
इन सबसे मिलकर ही
तू बनता है मेरे देश
मैं और तू दो तो नहीं है।
शरीर आत्मा मन
एक ही प्राणी के
स्थूल या सूक्ष्म अंग है
मैं इन्हें बँटने नहीं दूँगा
मैं इन्हें लुटने नहीं दूँगा
मैं इन्हें मिटने नहीं दूँगा

वसुधा

संपादन व प्रकाशन : स्नेह ठाकुर

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
संपादकीय		२
कृष्ण आ गया है	डॉ. नरेन्द्र कोहली	४
मुरली कैसे अधर धरूँ!	महाकवि गुलाब खंडेलवाल	१५
भारत और भारतीयता का अर्थ	प्रो. गिरीश्वर मिश्र	१६
भूकंप का संदेश	डॉ. एम.एल. गुप्ता “आदित्य"	१९
वे दोनों	डॉ. सुषम बेदी	२१
पासपोर्ट अमरीकन मेरो	ओम गुप्ता	३१
श्रीमद्भगवद्गीता		
राजधर्म का विश्वग्रंथ	यतींद्रनाथ चतुर्वेदी	३२
आकांक्षा	शकुंतला बहादुर	३४
हिन्दी के भगीरथ		
महामना पं. मदन मोहन मालवीय	डॉ. नीलम शर्मा	३५
क्षमा	स्नेह ठाकुर	३९
मैं और तू दो तो नहीं	पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि	१ अ

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :
16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534
वार्षिक शुल्क Annual subscription.....$25.00
डाक द्वारा By Mail, Canada & USA.....$35.00, Other Countries.....$40.00
Website: http://www.Vasudha1.webs.com
e-mail: sneh.thakore@rogers.com

संपादकीय

राष्ट्रपति भवन के सभागार में भारत के राष्ट्रपति माननीय श्री प्रणव मुखर्जी की उपस्थिति में गिने-चुने निमंत्रित व्यक्तियों के सान्निध्य में इंद्रधनुष द्वारा प्रस्तुत सूफ़ीआना कव्वाली सुनने के आनंद का सौभाग्य डॉ. आर.पी. सिंह के सौजन्य से प्राप्त हुआ, ठाकुर साहब और मैं डॉ. आर.पी. सिंह जी की सदाशयता के आभारी हैं.

भारत के प्रधान मंत्री माननीय श्री नरेन्द्र मोदी जी ने टोराण्टो कैनेडा में अपना वक्तव्य हिन्दी, पंजाबी और गुजराती के संबोधनों से आरंभ कर भारतीय मूल की जनता का हृदय जीत लिया. अपना भाषण हिन्दी में देकर अपने देश की भाषा की महत्ता का प्रदर्शन किया. स्वभाषा को गौरवान्वित कर, कहने वाले और सुनने वाले दोनों ही इस दिशा में गर्वित हुए.

पैसे की महत्ता हर समय-काल में रही है. इस युग-काल में भी है. जीवन को सुविधाजनक, सुचारु रूप से चलाने के लिए पैसा आवश्यक है. वर्तमान भी इससे अछूता नहीं है. दोनों ही देशों के प्रधान मंत्री अपनी आर्थिक संपन्नता को दृष्टिगत रख, उसमें कैसे और बढ़ोत्तरी की जा सकती है, इस विषय पर अपने वार्तालाप को केंद्रित करते रहे. भारत के पास ऐसा क्या है जिसे प्राप्त कर कैनेडा लाभान्वित हो सके और कैनेडा के पास देने के लिए ऐसा क्या है जिससे भारत लाभान्वित हो सके, ऐसी आर्थिक संपन्नता के आदान-प्रदान के मुद्दों पर जिससे दोनों देश लाभान्वित हो सकें, ज़ोर रहा. दोनों देशों की बहुलता का पारस्परिक फायदा उठाना लक्ष्य रहा. दोनों देशों के आत्म-सम्मान को सुरक्षित रखते हुए क्रय-विक्रय की अर्थ-व्यवस्था को समाहित करने के दाँव-पेंच में दोनों सफल रहे. कैनेडा के प्रधान मंत्री माननीय श्री स्टीवन हार्पर जी माननीय श्री मोदी जी की कैनेडा यात्रा में हरदम उनके साथ रहे. मैत्रीपूर्ण भाव से हरदम संग-संग रहना इस तथ्य का प्रमाण है. आँखों ने जो सपने देखे व दिखाये हैं उनकी प्रमाणिकता भविष्य निर्धारित करेगा.

यह हमारा सौभाग्य है कि श्री राम प्रसाद त्रिपाठी जी, श्री विकास सैनी जी एवं श्री दीपक चोपड़ा जी के सौजन्य से माननीय श्री लालकृष्ण आडवाणी जी के साथ जो मधुमय समय बीता उसके लिए हम दोनों ही सबके आभारी हैं. आडवाणी जी ने जिस आतिथ्य सत्कार की भावना, विनम्रता और प्रेम के साथ लगभग डेढ़-पौने दो घंटे का समय हमारे साथ बिताया वह आजन्म हमें उनके प्रति एक आदर-भाव के सूत्र में बाँध गया है. आडवाणी जी की विद्वत्ता में घुली शालीनता मन मोहने वाली है. इस सौहार्द्र पूर्ण अवस्था में समय किस अबाध गति से बहता चला गया इसका भान तो आज तक न हो पाया. श्री आडवाणी जी द्वारा दिए गए उपहार हमारी अमूल्य निधि हैं. जहाँ एक ओर उनके घर की बैठक की पेंटिंग्स बरबस ही आपकी दृष्टि आकर्षित करती हैं, क्या जीवंत चित्रण हैं! वहीं दूसरी ओर अपनी लाइब्रेरी की पर्वत श्रृँखलाओं की एक पेन्टिंग द्वारा उन्होंने जीवन का एक महामन्त्र मेरे हाथों में थमा दिया - "पहाड़ जैसी बाधाओं को हरदम पीछे धकेल कर रखो अपने सामने न आने दो". वास्तव में सही है, प्रगति के पथ पर कदम रुकने के लिए नहीं हैं बाधाओं को हटाते हुए आगे बढ़ने के लिए हैं. एक पग उठेगा तो ही तो दूसरा पग उसके साथ जुड़ेगा. और जब पग-दर-पग बढ़ेंगे तो मंज़िल तो ख़ुद-ब-ख़ुद रास्ते में आ बिछेगी.

अपनी लाइब्रेरी में जहाँ उन्होंने कुछ अमूल्य चित्रों से मेरा परिचय कराया, वहीं एक विरल, दुर्लभ पुस्तक से अवगत कराया - अँग्रेजी-सिंधी शब्दकोश, जिसमें सिंधी भाषा देवनागरी में लिखी थी.

आडवाणी जी ने अपनी पुत्री प्रतिभा से भी हमारा परिचय कराया. प्रतिभा जी अपने नामस्वरूप ही प्रतिभाशाली हैं. उनका व्यक्तित्व कई कलाओं से सम्पन्न है. यद्यपि कि उस समय वे

व्यस्त थीं पर उन व्यस्त क्षणों से भी समय निकाल उन्होंने हमारे साथ कुछ समय बिताया. इस हेतु धन्यवाद के शब्द कम हैं. हृदय से आशीर्वाद देती हूँ कि वे अपने नाम को और भी उजागर करें.

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के अध्यक्ष प्रो. लोकेश चंद्र जी के अमूल्य समय के लिए आभारी हूँ. कई विषयों पर विचार-विमर्श हुआ, उनके उपयोगी विचारों से अवगत हुई.

श्रीमती सुनीति शर्मा, डी.एस. हिन्दी एवं डॉ. नीना मल्होत्रा जे.एस. हिन्दी से हिन्दी विषयक, विदेशों में हिन्दी शिक्षण, मानकीकरण, शब्दकोश, विश्व हिन्दी सम्मेलन आदि अनेक विषयों पर गंभीर विचार-विमर्श हुआ. इस उपयोगी वार्ता हेतु दोनों की आभारी हूँ.

साहित्य अकादमी के अध्यक्ष डॉ विश्वनाथ प्रसाद तिवारी जी से साहित्य पर वार्तालाप हुआ. उनके द्वारा प्रदत्त स्नेह-मान की आभारी हूँ.

जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के डॉ. राजेश पासवान ने दो दिवसीय "संत गुरु रविदास जी पर अंतरविषयक अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी" का भव्य आयोजन किया. विशिष्ट अतिथि के रूप में आमंत्रित करने के लिए धन्यवाद एवं आभार.

उर्दू, अरबी, फारसी यूनिवर्सिटी लखनऊ के प्रो. अशरफ़ी ने दो दिवसीय "रोल ऑफ सूफ़ीज़ इन प्रमोशन ऑफ सोशल हारमोनी" विषय पर एक भव्य आयोजन किया. सम्मानित अतिथि हेतु धन्यवाद एवं आभार.

श्री अनिल जोशी जो दिल्ली में हिन्दी के प्रचार-प्रसार में संलग्न एक जाने-माने व्यक्तित्व हैं, तबादला होकर फ़ीजी जा रहे थे, उनके सम्मान समारोह में सम्मिलित करने हेतु आभार.

श्री देवेन्द्र मित्तल, डॉ. राम शरण गौड़, डॉ. दिनेश मिश्र, डॉ. नताशा अरोरा ने अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस की पूर्व संध्या पर सम्मानित किया, धन्यवाद एवं आभार.

सभी शुभेच्छुकों की शुभकामनाओं से व्यक्तिगत रूप से यह वर्ष माँ सरस्वती की असीम अनुकंपा लेकर मेरे लिए आया है, माँ सरस्वती ने बहुत कुछ मेरी झोली में डाला है.

शुभेच्छुकों की शुभकामनाओं से "लिम्का बुक ऑफ रिकॉर्ड" में मेरा नाम प्रवासी साहित्यकार एवं पत्रकार - संपादक-प्रकाशक वसुधा - दोनों ही रूपों में दर्ज़ हुआ है. लिम्का टीम को धन्यवाद, आभार.

फरवरी में साहित्य अकादमी म. प्र. ने मेरे उपन्यास "कैकेयी चेतना-शिखा" को अखिल भारतीय "वीरसिंह देव" पुरस्कार से पुरस्कृत किया है. साहित्य अकादमी, साहित्य अकादमी के निदेशक डॉ. त्रिभुवन नाथ शुक्ल, संस्कृति परिषद् की आभारी हूँ. भव्य अलंकरण समारोह हेतु धन्यवाद.

२ मार्च को जय शंकर प्रसाद सभागार में "अवध रत्न अवार्ड २०१५" मिला है. संगम के सभी पदाधिकारियों के प्रति धन्यवाद एवं आभार.

जहाँ यू.एन. सम्बद्ध संस्थाओं द्वारा "इंटरनेशनल वीमेन एक्सलेन्स अवार्ड २०१४" पिछले वर्ष मिला था वहीं इस वर्ष एक और यू.एन. सम्बद्ध प्रतिष्ठित रिसर्च फाउंडेशन इंटरनेशनल द्वारा इंटरनेशनल वीमेन सम्मान का सौभाग्य प्राप्त हुआ है. रिसर्च फाउंडेशन इंटरनेशनल तथा इंटर रोमा कल्चरल यूनिवर्सिटी के तत्वावधान में पी.जी. डिप्लोमा इन सोशल वर्क की विभागाध्यक्ष तथा रोमा यूनिवर्सिटी की रजिस्ट्रार डॉ. ऋचा सिंह द्वारा आयोजित भव्य समारोह में मंचासीन रोमा यूनिवर्सिटी के कुलाधिपति पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि, माउंट एवरेस्ट प्रथम महिला विजेता पद्मश्री संतोष यादव एवं डॉ. संतोष खन्ना तथा शिक्षा भवन के गणमान्य अतिथियों और भविष्य के कर्णधार मेधावी छात्र-छात्राओं की उपस्थिति में यह सम्मान प्रदान किया गया.

श्री राम की कृपा और आदरणीय एवं प्रिय अम्माँ माँ मातेश्वरी देवी के आशीर्वाद से इस वर्ष मेरा नया उपन्यास "लोक-नायक राम" भी प्रकाशित हो गया है. आशा है कि इसे भी पहले की ही तरह आपकी सद्भावनाएँ प्राप्त होंगी. श्री अनिल वर्मा जी प्रकाशक के साथ-साथ हितैषी, शुभाकांक्षी पारिवारिक सदस्य के रूप में हैं, आभार, आशीर्वाद.

श्रीराम की अनुकम्पा से ही हाल ही में मुझे केंद्रीय हिन्दी संस्थान आगरा द्वारा पुरस्कृत होने की सूचना दी गई है. यह सम्मान मुझे भारत के माननीय राष्ट्रपति के कर-कमलों द्वारा राष्ट्रपति भवन में प्रदान किया जाएगा.

सभी की शुभेच्छाओं को समेटे हुए, उनके प्रति आभार प्रगट करते हुए, सभी के प्रति मंगल कामनाओं सहित,

जय श्री राम सस्नेह, स्नेह ठाकुर

कृष्ण आ गया है

डॉ. नरेन्द्र कोहली

देवकी चौंक कर उठ बैठीं।

वसुदेव अपनी नींद पूरी कर चुके थे, किंतु अभी लेटे ही हुए थे। उन्हें देवकी का इस प्रकार चिहुँक कर उठ बैठना कुछ विचित्र-सा लगा।

"क्या हुआ?"

"कृष्ण कहाँ गया?"

वसुदेव ने अपनी आँखें पूरी तरह विस्फारित कीं, "कृष्ण? कृष्ण हमारे पास था ही कब?" "वह यहीं तो था मेरे पास...।" और वे रुक गईं, "तो मैंने स्वप्न देखा था क्या?"

"क्या देखा था?" वसुदेव ने पूछा।

"पर नहीं! वह सपना नहीं हो सकता।" देवकी ने कहा, "वह यहीं था, मेरे पास। मेरी नासिका में अभी तक उसकी वैजयंती माला के पुष्पों की गंध है। मेरे कानों में उसकी बाँसुरी के स्वर हैं। उसने छुआ भी था मुझे!..."

"तो तुम्हारा कृष्ण वंशी बजाता है?" वसुदेव हँस पड़े, "तुम्हें किसने बताया कि वह वंशी बजाता है? यादवों का राजकुमार वंशी बजाता है। वह ग्वाला है या चरवाहा कि वंशी बजाता है। तुमने कब देखा कि वह वैजयंती माला धारण करता है?"

"मैंने उसे देखा है।"

"सपने में ही देखा है न!" वसुदेव बोले, "साक्षात तो तुमने उसे उसी समय देखा था, जब एक मंजूषा में लेटा कर मैं उसे नंद के घर छोड़ने गया था।"

"सत्य कह रहे हैं आप। तभी देखा था।" देवकी ने कहा, "किंतु मैं भी सत्य कह रही हूँ, वह सपना नहीं था। वह आया था। उसने मेरे अश्रु पोंछे। बोला, "मत रो माँ! मैं आ गया हूँ। अब मैं तुम्हारे साथ ही रहूँगा।" मैंने कहा, "पुत्र! तू यहाँ से चला जा। कंस को पता लग गया तो वह तुझे जीवित नहीं छोड़ेगा।"

"तो क्या कहा उसने?"

उसने कहा, "मैं उसे जीवित छोड़ूँगा तब तो।" कैसी मधुर मुस्कान थी उसकी। मन हो रहा था कि उसका हाथ पकड़ कर यहीं बैठा लूँ उसे। किंतु विवेक कह रहा था कि उसे शीघ्र से शीघ्र विदा कर दूँ। भेज दूँ उसे यशोदा के पास, जहाँ वह आज तक सुरक्षित था।"

"तो फिर क्या किया तुमने? बैठा लिया या विदा कर दिया?"

"मैंने तो कुछ भी नहीं किया।" देवकी कुछ उद्विग्न हो उठीं, "उसने कहा, 'माँ! मैं जा नहीं सकता।"

"क्यों?" मैंने पूछा, "क्या कंस ने तुम्हें भी बंदी कर यहाँ कारागार में डाल दिया है?" वह हँस कर बोला, "नहीं माँ! चिंता मत करो, कंस तो क्या, मुझे कोई भी बंदी नहीं कर सकता।" "तो फिर तुम

जा क्यों नहीं सकते?" "क्योंकि जाता तो वह है, जो आता है। मैं न आता हूँ, न जाता हूँ। मैं तो सदा रहता हूँ।" "सदा रहते हो तो दीखते क्यों नहीं?" मैंने पूछा। "जो देखना चाहता है, उसे दीखता हूँ माँ! तुमने मुझे देख लिया न!"

वसुदेव मौन बैठे रहे।

थोड़ी प्रतीक्षा कर देवकी ने पूछा, "आप अब भी इसे स्वप्न मानते हैं?"

"क्या कह सकता हूँ।" वसुदेव कुछ आत्मलीन से थे। मंद स्वर में बोले, "रात्रि वाला प्रहरी चुपके से बता गया है कि अक्रूर, कृष्ण-बलराम को वृंदावन से ले आया है। वे मथुरा में हैं। उन्होंने कल संध्या समय मथुरा में पर्याप्त उत्पात किया है। आज जाने क्या होने वाला है। कंस अवश्य ही उनके चारों ओर किसी-न-किसी व्यूह की रचना कर रहा होगा।..."

"आप अपने पुत्रों के लिए भयभीत हैं?"

वसुदेव ने जैसे अपना अवसाद झटक दिया, "नहीं! भयभीत नहीं हूँ मैं। तनिक भी भयभीत नहीं हूँ। भय का कोई कारण नहीं है। सृष्टि ईश्वरीय विधान से चलती है, कंस की इच्छा से नहीं।"

"भय का कारण क्यों नहीं है?" देवकी ने कुछ चकित हो कर पूछा।

"कृष्ण अपनी इच्छा से मथुरा में आया है। वह अपना वध करवाने नहीं, दूसरों को त्राण देने आया है। कल नगर में दोनों भाइयों ने जितना भी उत्पात किया है, वह इसीलिए किया है कि सारी मथुरा को ज्ञात हो जाए कि कृष्ण आ गया है।..." * * * * * * * *

प्रात: सूर्योदय के साथ ही राजकर्मचारियों ने धनुर्यज्ञ-स्थल का परिशोधन किया। सैनिकों तथा आरक्षियों के शव हटाए गए, स्थल को स्वच्छ किया गया। रक्त और माँस के सारे चिह्न मिटाए गए। उसको अलंकृत करने के लिए पुन: सारा आयोजन किया गया।

कोटपाल ने आकर कंस को सूचना दी, "महाराज! यज्ञस्थल स्वच्छ एवं परिशोधित हो गया है। उसका अलंकरण भी पूरा कर दिया गया है, किंतु धनुष तो टूट चुका है स्वामी!"

"पुराने धनुष को जोड़ा नहीं जा सकता?"

"मुझे तो ऐसा नहीं लगता स्वामी कि हमारे पास कोई ऐसा चतुर कलाकार है, जो उसे इस प्रकार जोड़ दे कि वह पहले जैसा ही कठोर हो सके।" कोटपाल ने कहा, "कोई जोड़ भी दे तो..."

"तो क्या?"

"एक बालक भी उसे तोड़ देगा और वह ग्वाला कृष्ण सारा यश लूट ले जाएगा कि उसने महाराज कंस का कोदंड तोड़ दिया।"

कंस ने प्रद्योत को बुलाया, "क्या हमारे पास धनुष-यज्ञ के लिए कोई भी ऐसा कठोर धनुष नहीं है, जिसे कृष्ण तोड़ न सके?"

"महाराज! हमारे शस्त्रागार में एक से बढ़ कर एक भारी और कठोर धनुष रखे हैं, किंतु यज्ञ के अनुकूल **उनका अलंकरण नहीं हुआ है।"**

"कोई बात नहीं।" कंस बोला, "वह चाहे सुंदर दिखाई न दे, किंतु..." कंस ने उसे अपनी तर्जनी के संकेत से समझाया, "कृष्ण उसे तोड़ न पाए।"

"वह नहीं तोड़ पाएगा महाराज! निश्चिंत रहें।" प्रद्योत ने कहा, "किंतु इतना समय तो मुझे मिलना ही चाहिए कि उसे लीप-पोत कर यज्ञ-स्थल तक पहुँचाया जा सके।"

"तुम उसे तैयार करवाओ।" कंस बोला, "हम मल्लयुद्ध से समारोह का आरंभ करवाते हैं। धनुष-यज्ञ की बारी बाद में आएगी। मल्लयुद्ध के लिए अखाड़े तो सज्जित हैं न?"

"हमारे कर्मचारी सूर्योदय से पूर्व ही वहाँ पहुँच गए थे। यथास्थान मंच रखवा दिए गए हैं। पुष्पमालाओं और झंडियों से सारा क्षेत्र सुसज्जित कर दिया गया है।" प्रद्योत ने कहा, "किंतु महाराज! आपने अभी तक कृष्ण और बलराम को बंदी करने का आदेश नहीं दिया है। उन्होंने कल नगर में पर्याप्त उत्पात किया है। प्रशासन और राजसत्ता की छवि उससे कलुषित हुई है। प्रजा उसे राजा की अक्षमता मानती है।" उसने कंस की ओर देखा, "इससे पूर्व कि वे आज भी कोई उत्पात करें, हमें उनको बंदी कर लाने के लिए सैनिक भेजने चाहिए।"

"मुझे नहीं लगता कि उन्हें बंदी कर लाने के लिए एक दो वाहिनियाँ पर्याप्त हैं।" कंस ने कहा, "और दो उच्छृंखल छोकरों को पकड़ने के लिए, चतुरंगिणी सेना लेकर जाने से भी राजा का सम्मान नहीं बढ़ेगा, और..." प्रद्योत ने उसकी ओर देखा। "तुम जानते ही होगे, नंद पूरा स्कंधावार बनाए, यमुना तट पर पड़ा है।"

"वह ग्वाला क्या कर लेगा।"

"मैं व्यर्थ ही अपने सैनिक मरवाना नहीं चाहता।"

"तो महाराज!"

"उनके लिए दूसरा प्रबंध किया है मैंने।"

"जैसी महाराज की इच्छा।" प्रद्योत ने कहा, "किंतु एक बात कहना चाहता हूँ महाराज!"

"बोलो।"

"यह सारी भूल अक्रूर की है। जब वह उन दोनों को ले ही आया था तो उन्हें अपने साथ अपने घर ले जाना चाहिए था।" प्रद्योत ने कहा, "अपने घर में रखता। उनको खिलाता-पिलाता। उनका सत्कार करता। तब वे इस प्रकार मथुरा के पथों-वीथियों में उत्पात करते तो न घूमते। उसने तो एक शत्रु का सा व्यवहार किया है। मथुरा लाकर उन्हें खुला छोड़ दिया कि करो उत्पात।"

कंस ने स्पष्ट सहमति प्रकट नहीं की, किंतु विरोध भी नहीं किया, "एक बार यह धनुष-यज्ञ निबट जाए, उसके पश्चात मैं इस अक्रूर को भी समझ लूँगा। जहाँ तक मैं समझता हूँ, ये दोनों लड़के इस यज्ञ की अवधि में ही निबटा दिए जाएँगे।"

"महाराज की कामना पूरी हो।" प्रद्योत ने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। * * * * * * * *

"आज के लिए क्या विचार किया है कान्हा!" नंद चिंतित थे, "पता नहीं यशोदा क्यों हमारे साथ नहीं आई, नहीं तो मुझे तुम्हारी इतनी चिंता नहीं करनी पड़ती।"

"मैया नहीं हैं तो क्या हुआ।" कृष्ण हँसे, "बड़ी माँ तो हैं न! मैया के भाग की भी चिंता बड़ी माँ कर लेंगी।"

"चिंता तो मुझे है ही - तेरी भी और राम की भी। अपने भाग की भी, यशोदा के भाग की भी और देवकी के भाग की भी।" रोहिणी ने कहा, "तुम लोग उन्हें भूल जाते हो, जो कारागार में बँधे बैठे हैं। हथकड़ी-बेड़ी खोल नहीं सकते, कारागार की शलाकाएँ तोड़ नहीं सकते। तुम लोगों की चिंता उन्हें नहीं है क्या? रक्त के अश्रु बहा रही होगी देवकी!"

"अरे अब तो आप भी मैया के समान बोलने लगीं बड़ी माँ! मथुरा में आते ही आपकी तेजस्विता को ग्रहण लग गया क्या?" कृष्ण मुस्कराए, "किसी को नहीं भूला हूँ मैं। किसी को भूलता भी नहीं हूँ। उनके अश्रु भी पोंछ आया हूँ।"

"पवन बनकर गया था क्या? न किसी ने जाते देखा, न आते। न किसी ने कारागार में घुसने से रोका, न निकलने से।" रोहिणी ने कुछ प्रसन्न दीखने का प्रयत्न किया।

"इस गपोड़ी को रहने दें माँ!" बलराम बोले, "पर आप चिंता न करें। आज हम निपटारा कर ही देंगे, इस पार अथवा उस पार।"

रोहिणी काँप उठीं, "इस पार या उस पार का क्या अर्थ हुआ रे?"

"ओह, बड़ी माँ!" कृष्ण बोले, "दाऊ के शब्दों पर मत जाइए। बस यह समझिए कि कंस का बेड़ा पार कर ही देंगे।"

"कान्हा!" नंद कुछ अवरुद्ध कंठ से बोले, "मुझे न तुम्हारे अथवा बलराम के बल पर संदेह है, न तुम लोगों के कौशल पर, किंतु पुत्र! यह कंस की नगरी है। चारों ओर प्राचीर है, जिसे तुम्हारे जनक, वसुदेव कब से पार नहीं कर पाए। सैनिक चौकियाँ हैं, व्यूह हैं, चतुरंगिणी सेना है और तुम्हारे पास कोई शस्त्र भी नहीं है। यह कोई बराबरी का जोड़ तो है नहीं पुत्र! मेरा मन बहुत आशंकित है।"

"बाबा! मैं स्वयं नहीं जानता कि कंस की क्या योजना है...।"

बलराम ने कृष्ण को रोक दिया, "क्या करना है, उसकी योजनाओं को जान कर। हमारी अपनी योजना है कि जो कोई भी शत्रु भाव से आए, उसकी ग्रीवा में एक गाँठ लगा देंगे। इस काम से न मुझे कंस रोक सकता है, न उसकी चतुरंगिणी सेना। आए हैं तो पिता जी और छोटी माँ को कारागार से छुड़ा कर ही दम लेंगे और ऐसा प्रबंध कर देंगे कि फिर उनके जीवन में कभी कारागार जाने का अवसर न आए।"

"दाऊ का कहा हम अक्षरश: पूरा करेंगे। इसमें तो आप कोई संशय करें नहीं।" कृष्ण बोले, "अब कुछ बातें मेरी भी सुन लीजिए। मेरे मन में बहुत स्पष्ट है कि हमारा एक ही परिवार है। मैं नंद बाबा

और यशोदा मैया का पुत्र कान्हा हूँ। किंतु कंस के लिए, मैं वसुदेव और देवकी का आठवाँ पुत्र हूँ। इसीलिए वह आपके और मेरे साथ एक-सा व्यवहार नहीं करेगा। वह आपको पृथक रूप से बुलाएगा। आप उसकी प्रजा के एक प्रतिनिधि के रूप में जाकर उसे भेंट उपहार देंगे। वह चाहेगा कि आपको वह अपने दर्शकों के मध्य सम्मान से बैठाए और मुझसे दूर कर दे। मुझ पर संकट आए तो आप वहाँ बैठे हों, जहाँ से आप मेरी सहायता न कर सकें। आपके साथ आए गोप अपने सत्कार से प्रसन्न होकर पृथक हो जाएँ और मैं और दाऊ उसकी नगरी में एकदम अकेले और असहाय हो जाएँ। यह वह कैसे करेगा, यह अभी मुझे ज्ञात नहीं है किंतु सूचनाएँ आ रहीं हैं। हमारे मित्र लोग सूचनाओं से हमारी सहायता करेंगे और कर रहे हैं। इसीलिए एक बात निश्चित है कि आप कंस के बुलावे पर उसकी प्रजा के प्रतिनिधि के रूप में जाएँ और जो उपहार इत्यादि देने हों दे दें। जहाँ वह बैठाए, वहाँ बैठें और उसके समारोह का आनंद लें।..."

"और तुम कान्हा?"

"मैं और दाऊ एक साथ रहेंगे।" कृष्ण ने कहा, "न उसके निमंत्रण की प्रतीक्षा करेंगे, न उसके बताए हुए समय और मार्ग से जाएँगे। हमारे सारे गोपाल हमारे साथ नहीं होंगे किंतु ऐसे स्थानों पर रहेंगे, जहाँ से वे हमारी सहायता के लिए कूद सकें। विशेषकर यदि कंस के पक्ष से बड़ी संख्या में योद्धा आएँ तो हमारे मल्ल उन्हें रोके रह सकें और हम तक पहुँचने न दें।"

नंद की आँखों में अश्रु आ गए, "पुत्र! हम तुम्हारे साथ नहीं होंगे, तो तुम्हारी सहायता कैसे करेंगे?"

"कंस हमें भ्रम में रखना चाहता है। हम उसे भ्रम में रखेंगे।" कृष्ण बोले, "आप उसकी दृष्टि में रहेंगे, किंतु हमारी गोप सेना अदृश्य रहेगी। फिर जैसा अवसर आएगा, वैसा ही करेंगे।"

"इस समय क्या करना है?"

"आप जाने की तैयारी करें। अपने उपहारों के साथ उसके बुलावे की प्रतीक्षा करें।" कृष्ण बोले, "गोप सेना को मैं अज्ञात स्थान पर भेज रहा हूँ, जहाँ से वह हमारी सहायता के लिए कूद पड़ेगी। मैं और दाऊ कहाँ जा रहे हैं, यह गोपनीय है।"

"मेरा मन नहीं मानता पुत्र!" नंद की आँखें अश्रुपूर्ण थीं।

"नंद महर!" रोहिणी ने पहली बार उनके वार्तालाप में हस्तक्षेप किया, "कान्हा को वही करने दीजिए, जो वह करना चाहता है। मैं इधर वर्षों से अपने पति से दूर हूँ, किंतु मैं उन्हें भली प्रकार जानती हूँ। आज कान्हा एकदम उनके ही स्वर में बोल रहा है। इसे अपना युद्ध अपने ढंग से लड़ने दीजिए। बस बलराम उसके साथ रहे। दोनों भाई साथ होंगे तो मुझे तनिक भी चिंता नहीं होगी।"

नंद ने अपने अश्रु पोंछ लिए, "आप कह रही हैं भाभी! तो मैं कान्हा को नहीं रोकूँगा।" "यह हुई आप लोगों की योजना।" रोहिणी ने कहा, "अब मैं भी जा रही हूँ, मथुरा में। मैं अकेली ही जाऊँगी।"

"आप कहाँ जाएँगी और वह भी अकेली?"

"मुझे आर्यपुत्र और देवकी के अपने घर आने से पहले घर को साफ़-सुथरा करना है। बहुत दिनों से बंद पड़ा है। उसे रहने योग्य तो बना लूँ।"

"वहाँ तो कोई सेवक भी नहीं होगा, तो फिर आप...?" "उसका प्रबंध हो जाएगा, आप मेरी चिंता न करें नंद महर!" * * * * * * * *

कृष्ण और बलराम अपना मुँह-सिर लपेटे, स्वयं को पूर्णत: छिपाए और कुरूप वेश अपनाए हुए, त्रिवक्रा के घर में प्रविष्ट हुए। त्रिवक्रा दस्यु जैसे दो लोगों को इस प्रकार अपने घर में प्रविष्ट होते देख, डर गई। "कौन हो तुम लोग?"

"तुम्हारे शत्रु नहीं हैं।" कृष्ण ने कहा।

"पर मित्र भी नहीं लगते।" त्रिवक्रा बोली, "मित्र होते तो इस प्रकार क्यों आते?"

"अपने मित्रों को पहचानो सखि!" कृष्ण ने मुख पर लपेटा वस्त्र हटा दिया।

"ओह तुम प्रियदर्शन!" त्रिवक्रा चकित थी, "इस प्रकार क्यों आए?"

"ताकि कोई जान न सके कि हम तुम्हारे घर आए हैं। हमें तुम तक पहुँचने से कोई रोक न सके, किंतु जब निकलेंगे तो सब देखेंगे कि हम तुम्हारे घर से गए हैं।"

"मैं इतना ही जान पाई हूँ कृष्ण कि कंस तुम्हें किसी शस्त्र से नहीं, पशुओं से मरवाने की योजना बनाए बैठा है।" त्रिवक्रा ने कहा, "मैंने बहुत हाव-भाव दिखाए, हेला का भी सहारा लिया, किंतु उसके मुख से इससे अधिक और कुछ नहीं निकलवा पाई।"

"इतना ही पर्याप्त है।" कृष्ण मुस्करा रहे थे, "अब हमें अच्छे वस्त्र दो। चंदन और अंगराग दो। हमें महाराज कंस के धनुर्यज्ञ में जाना है। राजाओं, राजकुमारों, मंडलेश्वरों तथा राजपुरुषों की सभा में जाना है। हमारा वेश भी राजसी होना चाहिए।"

"मेरा सौभाग्य।" त्रिवक्रा अत्यधिक प्रसन्न थी, "ऐसा सौभाग्यशाली दिन तो मेरे जीवन में आज तक आया ही नहीं। तुम मुझसे मेरे प्राण भी माँग लो, तो आज्ञापालन में एक क्षण नहीं लगाऊँगी।"

कृष्ण तथा बलराम ने स्नान किया। नए वस्त्र धारण किए। चंदन और अंगराग लगाया।

"तुम धनुर्यज्ञ देखने नहीं चलोगी?"

"तुम्हें संकटों से जूझते नहीं देख सकूँगी। प्राण निकल जाएँगे मेरे।" त्रिवक्रा ने कहा, "मैं अपने घर पर ही तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी।" * * * * * * * *

कृष्ण और बलराम निर्विघ्न यज्ञस्थल तक पहुँच गए। धनुर्यज्ञ वाला स्थल इस समय जन-शून्य जैसा ही था। कुछ थोड़े से राजकर्मचारी स्थान और धनुष का परिशोधन इत्यादि कर रहे थे। वे जानते थे कि राजा को वहाँ नहीं आना है, अत: उनमें किसी प्रकार का कोई उत्साह नहीं था। बँधे-बँधे से वहाँ बैठे समय के व्यतीत होने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

"आपके महाराज कहाँ हैं?" कृष्ण ने पूछ ही लिया।

"महाराज मल्लयुद्ध देखेंगे।" मुखिया बोला, "जब उन गँवार गोपों ने धनुष ही तोड़ दिया तो यहाँ की शोभा ही क्या रही।"

उसने सिर उठा कर देखा। कुछ क्षण उनको निहारता रहा और फिर उसके चेहरे का वर्ण पीला पड़ गया, "तुम वही तो नहीं हो...।"

"वही हैं।" बलराम बोले, "और तूने हमें गँवार कहा...।"

कृष्ण आकर मुखिया के सामने खड़े हो गए, "नहीं दाऊ! इसे क्षमा कर दो। यह एक अहंकारी राजा का मूर्ख कर्मचारी है।"

मुखिया काँप रहा था।

"डरो नहीं।" कृष्ण बोले, "हमें बता दो कि कंस कहाँ होगा।"

मुखिया ने मल्ल-स्थल का मार्ग बता दिया और फिर भयभीत स्वर में बोला, "वहाँ मत जाना। वहाँ मुष्टिक, चाणूर, कूट, शल और तोशल होंगे। वे तुम लोगों को जीवित नहीं छोड़ेंगे।"

"सूचना के लिए हम तुम्हारे आभारी हैं।" कृष्ण मुस्कराए, "किंतु तुम भी सावधान रहो कि तुम्हारे राजा को यह सूचना न मिल जाए कि तुमने हमें सचेत किया है।"

मुखिया पहली बार थोड़ा मुस्कराया, "कल से तो सारा नगर ही सचेत हो उठा है। सारी प्रजा कह रही है कि राजा यदि यज्ञ-स्थल पर सार्वजनिक रूप से धनुष तोड़ने वाले अपने शत्रुओं को दंडित नहीं कर सका तो वह किसी का भी क्या बिगाड़ सकता है।"

"ठीक ही तो है।" बलराम बोले, "निर्भय होकर जिओ।"

वे मुखिया के बताए हुए मार्ग पर चल पड़े।

"त्रिवक्रा ने कहा है कि वह हमें पशुओं से मरवाना चाहता है।" बलराम ने कहा, "और यह मुखिया कह रहा है कि वहाँ कंस के प्रधान मल्ल होंगे। कहीं इसका यह अर्थ तो नहीं कि लोग उसके मल्लों को ही पशु कहते हैं।"

"बहुत संभव है कि ऐसा ही हो और न भी हो तो क्या।" कृष्ण बोले, "हमने भी तो अपना वृंदावन सारे असुराकार पशुओं से मुक्त कराया ही था। कंस के पास उनसे भयंकर पशु तो नहीं होंगे। चलो दाऊ, देखते हैं कि वे निरे पशु ही हैं अथवा नर-पशु!"

मल्ल-स्थल निकट आ गया था। दूर से ही संकेत मिल रहे थे कि वहाँ कोई महत्वपूर्ण कार्य हो रहा है। जन-सूमह उस दिशा में बढ़ा जा रहा था। मार्ग के दोनों ओर राजकर्मचारी और सैनिक खड़े थे। रथों की संख्या भी कुछ अधिक ही थी।

वे दोनों अभी मुख्य द्वार से कुछ पीछे ही थे कि बलराम रुक गए, "मुझे लगता है कि वे लोग नंद बाबा को पुकार रहे हैं।" कृष्ण भी पूर्णत: सचेत थे। बोले, "मैंने भी सुना है। हमें यहीं रुक जाना चाहिए। पहले देख लें कि वह बाबा को क्यों पुकार रहा है। उसके पश्चात जैसा आवश्यक होगा, वैसा ही करेंगे।"

वे एक वृक्ष की छाया में रुक गए। उन्होंने देखा कि नंद बाबा तो अभी तक अपने शकटों के निकट ही थे, किंतु उनके अनेक साथी इधर-उधर हो चुके थे। पुकारे जाने पर वे वहाँ से उठे और दही, पनीर और मक्खन के बर्तन लिए हुए दस-बारह गोप कंस के सामने पहुँचे। उन्होंने वे सारे भांड उसके सम्मुख रख, हाथ जोड़ कर प्रणाम किया।

"तुम्हारा पुत्र नहीं आया?"

"कौन-सा पुत्र?" नंद ने पूछा।

"वही, जिस पर तुम सब लोगों को बहुत गर्व है - कृष्ण! कान्हा!"

"आपने ही तो घोषणा कर दी है कि वह आर्य वसुदेव का पुत्र है, तो वह मेरा पुत्र कहाँ रहा।"

"तुम तो यही कहते रहे हो न।"

"जब पहले दिन से उसका पालन-पोषण किया है, तो पिता तो उसका मैं ही हूँ, जनक चाहे आर्य वसुदेव हों।"

"तो तुम यह स्वीकार करते हो कि वह देवकी के आठवें गर्भ की संतान है?"

"मेरा मानना न मानना क्या अर्थ रखता है महाराज!" नंद ने दीन भाव से हाथ जोड़ दिए, "आपकी आज्ञा हो जाने के पश्चात मैं कैसे कह सकता हूँ कि मैं उसका जनक हूँ। महाराज की आज्ञा ही सर्वोपरि है। वही परम सत्य है। आप इस सूर्य की ओर अंगुली उठा कर कह दें कि वह चंद्रमा है, तो आपकी प्रजा का धर्म है कि वह मान जाए कि वह चंद्रमा ही है।"

"तुम मेरा उपहास कर रहे हो नंद!" कंस क्रुद्ध हो उठा।

"नहीं महाराज! मैं ऐसा दुस्साहस कैसे कर सकता हूँ।" नंद निर्भीक स्वर में बोले, "मैं तो अपनी राजभक्ति का प्रमाण दे रहा हूँ।"

कृष्ण ने मुस्करा कर बलराम की ओर देखा। बलराम मुख खोले चकित भाव से नंद को देख रहे थे, "अब बाबा डरते नहीं हैं एकदम।"

"तो कहाँ है कृष्ण?"

"कृष्ण और बलराम को तो आपके राजपुरुष आर्य अक्रूर अपने साथ अपने रथ में बैठा कर ले आए थे। उन्होंने देवी रोहिणी को भी उस रथ पर बैठने नहीं दिया।" नंद बोले, "वे दोनों लड़के तो हमारे साथ आए ही नहीं। क्या वे अक्रूर के प्रासाद में अथवा आपके अतिथिगृह में नहीं हैं?"

"नहीं! वे तुम्हारे साथ तुम्हारे डेरे पर थे।"

"हाँ! हमारे साथ देवी रोहिणी थीं। संभव है वे अपनी माता से मिलने आए हों। देवि रोहिणी खीर बहुत अच्छी...।"

"अच्छा जाओ अपने स्थान पर बैठो।" कंस अपने राजपुरुषों की ओर मुड़ा, "इसे ले जाकर वहाँ विशिष्ट जन के मध्य बैठा दो। धूर्त कहीं का।"

नंद महर को राजा, मंत्री, मंडलेश्वरों तथा राजपुरुषों से कुछ दूर विशिष्ट जन के मध्य बैठा दिया गया। कृष्ण ने दृष्टि घुमा कर देखा, उन्हें अनेक गोप मल्ल प्रजा में बैठे दिखाई दे रहे थे।

"अब चलें?" बलराम उतावले हो रहे थे।

"चलिए।"

"किधर से चलें?"

"तोरण से चलते हैं, प्रकट रूप से।" कृष्ण बोले, "अब छुप कर क्या जाना।"

वे दोनों आगे बढ़े और मुख्य द्वार के बीचों-बीच आ पहुँचे। कृष्ण चकित थे कि अब तक न तो कंस अथवा उसके साथियों ने कृष्ण को देख कर कोई विशेष प्रतिक्रिया प्रकट की थी और न ही किसी ने उन्हें पकड़ने अथवा उनपर आक्रमण करने का प्रयत्न किया था। जनसामान्य में कुछ हलचल अवश्य थी। कदाचित यह वे लोग थे, जिन्होंने कल संध्या समय उन्हें हाट इत्यादि में देखा था।

कंस ने उनकी ओर देखा। उसका चेहरा तमतमा गया। वह अक्रूर की ओर मुड़ा, "ये ही हैं?"

"हाँ महाराज! ये ही दोनों वसुदेव के पुत्र हैं।"

कंस ने कोटपाल की ओर देखा, "कल सायं इन्होंने ही मथुरा में उत्पात किया था?"

"हाँ महाराज!"

कंस अपने सिंहासन से उठ खड़ा हुआ, "कुवलयापीड़!"

अक्रूर का मन काँप गया।

कुवलयापीड़ कंस का मदांध हाथी था। जब किसी भयंकर अपराधी को सार्वजनिक मृत्युदंड का आदेश होता था तो उसे खुले मैदान में कुवलयापीड़ अपने पैरों तले रौंदता था। उसे इस काम के लिए प्रशिक्षित किया गया था। लगता था कि वह हाथी अब एक प्रकार से हिंस्र हो चुका था। उसे लोगों को रौंद कर उनका भुरकस बनाने में आनंद आता था।

"दाऊ! त्रिवक्रा ने ठीक सूचना दी थी। यह है वह पशु, जिसको हमारी सेवा करने के लिए तैयार किया गया है।"

"इसका क्या करना है?" बलराम ने पूछा।

"करना क्या है।" कृष्ण हँसे, "आँख मिचौनी खेलते हैं। बहुत दिनों से खेली भी नहीं है।"

"प्रद्योत!" कंस ने ऊँचे स्वर में पुकारा, "कुवलयापीड़ को कृष्ण के स्वागत के लिए प्रस्तुत किया जाए। और देखो, कुवलयापीड़ कोई उत्पात न करे। चारों ओर से घेर लो। आवश्यकता हो तो शूलों से वेध दो।"

कंस के सैनिकों ने एक वृत्त बना लिया था। उन सबों के हाथों में लंबे-लंबे शूल थे।

"दाउ! इनके हाथ तो अभी से काँप रहे हैं।" कृष्ण मुस्कराए, "और चतुराई देखो, मामा यह नहीं बता रहा कि किसको शूलों से वेधना है। वह हमें घेर कर मारना चाहता है।"

बलराम ने कुछ नहीं कहा। उनकी दृष्टि सैनिकों के दूसरे वलय पर थी। वे सैनिक धनुष-बाण से सज्जित **थे।... कृष्ण देख रहे थे कि चाहे रंगभूमि के बाहर ही सही, किंतु एक वलय उनके अपने साथियों का भी था।**

कुवलयापीड़ ने अपनी ऊपर उठी हुई सूँड में पुष्पों की एक लंबी माला थाम रखी थी, जैसे कृष्ण को माला अर्पित करने की तैयारी हो।

महावत ने कुवलयापीड़ को हाँक दिया था। कुवलयापीड़ भी अपना प्रिय खेल खेलने की व्यवस्था देख कर प्रसन्न था। वह बड़े उत्साह से आगे बढ़ रहा था।

"महाराज!" कृष्ण पुकार कर बोले, "खेल नियम के अनुसार होना चाहिए। आदेश दें कि यदि कृष्ण ढंग से स्वागत न करवा सके तो उसे शूलों से वेध दिया जाए और कुवलयापीड़ ढंग से स्वागत न करे, बीच में ही भागने लगे, तो सैनिक उसे भी शूलों से वेध दें।"

कंस ने सायास अट्टहास किया, "तुम अपना पक्ष सँभालो कृष्ण! कुवलयापीड़ अपना दायित्व अच्छी तरह समझता है।" कृष्ण ने कमर कसी और अपनी घुँघराली अलकें समेट लीं। वे यथासंभव कुवलयापीड़ से अधिकतम दूरी पर चले गए थे। सैनिक सावधान हो गए, कहीं कृष्ण उनके अवरोध से बाहर न निकल जाएँ। कुवलयापीड़ हुमक-हुमक कर उनकी ओर बढ़ रहा था। सहसा कृष्ण उसकी ओर दौड़े और उसके निकट आकर स्वयं को अद्‌भुत कौशल से उछाल दिया। कुवलयापीड़ उनको ढूँढ रहा था और वे उसकी पीठ पर जा पहुँचे थे।

महावत ने अकस्मात उनको अपने निकट पा, जैसे घबरा कर अपने अंकुश से उन पर प्रहार करने का प्रयत्न किया। कृष्ण ने अपने हाथ से अंकुश को थामा और पैर की ठोकर से महावत को भूमि पर फेंक दिया। महावत सावधान था, अन्यथा क्षण भर में ही वह कुवलयापीड़ के पैरों से कुचला जाता। कुवलयापीड़ भी समझ रहा था कि उसे अपने महावत को नहीं कुचलना है। पीठ पर बैठे कृष्ण ने जब अंकुश से उसे कोंचा तो उसकी समझ में आया कि उसका आखेट कहाँ है।

कुवलयापीड़ ने अपनी सूँड से कृष्ण को लपेटने का प्रयत्न किया, किंतु वह संभव नहीं हुआ तो उसने धक्का मार कर उन्हें नीचे गिरा दिया। कृष्ण उसके सामने भूमि पर थे और वह अपना पैर उठा कर उन पर रखने जा रहा था। कृष्ण सर्प की सी गति से सरक कर उसके पैरों के बीच में चले गए। वे उसके अगले और पिछले पैरों के मध्य थे; और उसकी सूँड वहाँ तक पहुँच नहीं पा रही थी। कुवलयापीड़ पीछे हटा और उसने अपने बड़े-बड़े नुकीले दाँतों से उनको छेद डालने के लिए जोर से भूमि पर आघात किया... किंतु कृष्ण वहाँ से हट चुके थे और कुवलयापीड़ के वे बड़े-बड़े दाँत अपनी ही शक्ति के वेग में धरती में जा धँसे। उन्हें खींच कर मिट्टी से निकालने में ही वह समझ गया था कि दाँत हिल गए थे। रंगभूमि की धरती पीट-पीट कर कठोर की गई थी। शक्तिशाली कुवलयापीड़ ने उसी धरती पर अपना सिर पटक लिया था। वह अपनी पीड़ा को सँभालने का प्रयत्न कर रहा था कि उसे आभास हुआ कि कृष्ण उसकी पूँछ से लटके ही नहीं थे, उसे उखाड़ लेने के लिए प्रयत्नशील थे।... उसके बड़े-बड़े दाँतों से रक्त बह रहा था। वह पीड़ा से कराह रहा था और अब उसकी पूंछ टूटने को हो रही थी। वह अपनी सूंड को अपनी पूँछ तक नहीं ले जा सकता था। कुवलयापीड़ क्रोध से पागल हो उठा।...और कृष्ण यही चाहते थे।

अब कुवलयापीड़ बिना सोचे-समझे आक्रमण कर रहा था। महावत उसकी पीठ पर था ही नहीं कि उसे संयत कर, कोई दिशा-निर्देश करता।... इस प्रकार के आक्रमण से बचने के लिए कृष्ण को केवल उस स्थान से हट जाना था, जहाँ कुवलयापीड़ आघात कर रहा था।... और सहसा कृष्ण क्षमता भर अपने पूरे वेग से भागे।

कुवलयापीड़ प्रसन्न हो गया। वह उन्मुक्त भाव से उनका पीछा कर रहा था। हाथी के भय से सैनिक वलय टूट चुके थे। किसी को हाथी के पैरों तले कुचला जाना पसंद नहीं था। जब सैनिक थे ही नहीं तो कौन किसको रोकता और कौन किसको मारता।... दौड़ते-दौड़ते सहसा कृष्ण भूमि पर गिर पड़े... देखने वालों का कलेजा मुँह को आ रहा था और बलराम को क्रोध आ रहा था।... क्या कर रहा है यह कृष्ण! क्या आवश्यकता थी कुवलयापीड़ के आगे-आगे भागने की। वह हाथी इस समय इतना तो आहत हो चुका था कि कृष्ण किसी भी अन्य प्रकार से उसे पीड़ित कर सकता था। और कुछ नहीं तो उस पर आरूढ़ होकर उसके अंकुश से उसे मार-मार कर उसके प्राण ले सकता था। पर यह सदा अपनी ही कोई चतुराई दिखाने के प्रयत्न में रहता है। अब यह कुवलयापीड़ के मार्ग में भूमि पर पड़ा है। उठ कर न भाग सका और हाथी ने उसे कुचल दिया तो?...और बलराम को पहली बार लगा कि वे व्याकुल हो उठे हैं और इस युद्ध में हस्तक्षेप करना चाहते हैं...

कुवलयापीड़ कृष्ण के सिर पर आ पहुँचा था और कृष्ण दो बार उठने का प्रयत्न कर पुन: गिर चुके थे। स्पष्ट लग रहा था कि उनमें अब उठने की भी शक्ति नहीं रह गई थी। कुवलयापीड़ ने अपनी सूँड में लपेट कर उन्हें उठा कर जोर से भूमि पर पटकने का प्रयत्न किया किंतु कृष्ण उसकी सूँड की पकड़ से फिसल कर फिर से धरती पर आ गए थे। इस बार कुवलयापीड़ ने अपने लंबे तीखे दाँतों को उनके शरीर में भोंक देने के लिए पूरे वेग से प्रहार किया।... किंतु उसके दाँत धरती से जा टकराए। कृष्ण लोट कर एक किनारे हो चुके थे।... कुवलयापीड़ के दाँत उसकी सूँड के समान ही झूल रहे थे। कृष्ण ने स्फूर्ति से उठ कर उसका एक दाँत पकड़ कर खींच लिया। दाँत कृष्ण के हाथ में था और कुवलयापीड़ रक्त बहाता हुआ, पीड़ा से पागल होकर चिंघाड़ रहा था।

महावत अपने हाथी की रक्षा में आ गया था। उसके हाथ में खड्ग था। उसने ज़ोर से प्रहार किया। कृष्ण पीछे हट गए थे और उन्होंने कुवलयापीड़ का दाँत महावत के पेट के आर-पार पहुँचा दिया था। उसके पश्चात महावत नहीं उठा।

अब कृष्ण के हाथ में एक शस्त्र था। वे कुवलयापीड़ पर पीछे, दाएं, बाएं - तीन ओर से उसी के दाँत से प्रहार कर रहे थे। उसका दाँत अंकुश से भी अधिक पीड़ा देने वाला था। कुवलयापीड़ तड़प-तड़प कर उन पर झपटता था; किंतु उसमें अब वह स्फूर्ति नहीं रह गई थी और न ही उतना बल ही दिखाई दे रहा था। रक्त के फव्वारे उसके शरीर से फूट रहे थे।... और कृष्ण का बल जैसे कई गुना हो गया था।... कुछ ही क्षणों में कुवलयापीड़ धरती पर आ गिरा और कृष्ण कूद कर उसके ऊपर जा चढ़े।

मुरली कैसे अधर धरूँ!

महाकवि गुलाब खंडेलवाल

मुरली कैसे अधर धरूँ!
सुर तो वृंदावन में छूटे, कैसे तान भरूँ!
जो मुरली सबके मन बसती
जिससे थी तब सुधा बरसती
आज वही नागिन-सी डसती, छूते जिसे डरूँ
जिसको लेते ही अब कर में
पीड़ा होती है अन्तर में
कैसे फिर उसकी धुन पर मैं, जग को मुग्ध करूँ!
इसको तभी धरूँ अधरों पर
जब संग-संग हो राधा का स्वर
जब यह मुरली सुना-सुनाकर, उसका मान हरूँ
मुरली कैसे अधर धरूँ.

भारत और भारतीयता का अर्थ

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति महात्मा गाँधी हिन्दी विश्वविद्यालय

आजकल के चर्चित सरोकारों में 'भारत' और 'भारतीयता' के सवाल प्रछन्न और प्रत्यक्ष दोनों ही रूपों में खासी चर्चा का विषय बन चुके हैं और कई बड़े बुद्धिजीवी इस पर बहस में शिरकत कर रहे हैं. दूसरी ओर ऐसों की भी कमी नहीं है जो इसे बेमतलब का मुद्दा मानते हैं. इसका परिदृश्य आज जटिल और बदला हुआ है. देश के स्वतंत्र होने के पहले और स्वतंत्र होने के तत्काल बाद और अब लगभग सात दशक की परिपक्वता के करीब पहुँचते-पहुँचते इसे लेकर आज बहुतेरे यह मान कर इस तरह की चर्चा से तटस्थ हो चले हैं कि यह तो कोई सार्थक प्रश्न ही नहीं है. कुछ इसे वैश्विक या भूमंडलीकृत हो रहे आज के समय की जरूरतों के अनुसार समझना चाहते हैं. कुछ इसे केवल स्थानीय दृष्टि से ही देखना चाहते हैं. कुछ इसे सभ्यता और संस्कृति के विमर्श से जोड़ कर देखते हैं. जो भी हो अंतरराष्ट्रीयता के सारे प्रयासों के बावजूद आज भी राज्य या 'नेशन स्टेट' की अवधारणा निर्णायक महत्व रखती है और निकट भविष्य में सीमाविहीन देश जैसी कोई अवधारणा आकार लेती नजर नहीं आती.

आज का सत्य यही है कि देशों की सीमाएँ बाधा (का अधिक) और संपर्क (का कम) का काम कर रही हैं. देश की सीमाओं की रक्षा सबके सामने एक बड़ी चुनौती है. 'देश' और 'राष्ट्र' केवल कोरी भौगोलिक अवधारणाएँ नहीं होतीं. उन इकाइयों की रचना के साथ एक समाज या समुदाय विशेष की आशा-आकांक्षा भी जुड़ी होती है. देश की अवधारणा एक स्वप्न को समर्पित रहती है. आज के तमाम राष्ट्रों के साथ उनके साथ जुड़ी लंबी संघर्ष-गाथा आसानी से देखी जा सकती है जो दूसरे समाजों और समुदायों की साम्राज्यवादी आकांक्षाओं के प्रतिरोध को दर्शाती हैं. शक्तिसंपन्न और आर्थिक रूप से प्रबल देशों की दादागिरी, उनकी सत्ता और शक्ति का जलवा अभी भी बरकरार है. कहने का तात्पर्य यह कि देश की इकाई अभी भी राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, सामरिक और सांस्कृतिक रूप से महत्वपूर्ण बनी हुई है और उसे नकारा नहीं जा सकता.

आज बौद्धिक कवायद में भारत समेत सब कुछ 'कंटेस्टेड' माने जाने का फैशन-सा चल पड़ा है, पर उससे दूर करोड़ों (भारतीय) जनों के तन-मन में भारत जीवित है. आम आदमी जिनसे देश आकार लेता है वह भारत की एक सामाजिक स्मृति भी रखता है. उसके लिए 'देश' स्थानबोधक है और भारत एक भाव भी है. 'भारतीय' होने का मतलब है भारतभूमि में रहने की जीवन-व्यवस्था में शामिल होना. भारत कहें या 'इंडिया' यह मूलतः एक भौगोलिक स्थान और उसकी परिधि को रेखांकित करता है. इस भूभाग को 'जंबू द्वीप', 'आर्यावर्त', 'भारतवर्ष' और 'हिंदुस्तान' के नाम से भी जानते हैं. हिमालय और सागर इसकी सीमाएँ बनाते हैं. 'शस्यश्यामलां' के देश गान और 'जनगणमन' के राष्ट्रीय गान में जीवंत भारत माता को जिस रूप में स्मरण किया गया है वह भौगोलिक अवधारणा ही नहीं उसकी सीमा में रहने वाले बाशिंदों की सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता पर बल देती है जिसका एक भावात्मक रूप भी है. भारत एक सामाजिक श्रेणी भी है जो समाज द्वारा रचित और स्वीकृत है. यह उस सामाजिक आकांक्षा का प्रतीक भी है जो एक आदर्श स्थिति की दिशा में जाने के लिए प्रेरित करती है. आधुनिक युग में एक स्वतंत्र जनतंत्र के रूप में एक राज्य की स्थापना हुई और सहमति से एक संविधान बना और

सामाजिक आकांक्षा को एक मूर्त रूप मिला. हमने उसमें आवश्यकतानुसार बदलाव भी किया है. इस इकाई के सदस्य के रूप में हमारी एक भारतीय पहचान है.

स्मरणीय है कि एक समुदाय या सामाजिक इकाई की भिन्नता या अलग सत्ता स्थापित करना व्यावहारिक दृष्टि से भी आवश्यक है. ऐसा करना समाज को अंदर से बांधता है, एकजुट करता है और अन्य (वैसी ही) इकाइयों से फर्क करता है. वैधानिक रूप से 'नेशन' या राष्ट्र एक कानूनी इकाई भी है और उसके सदस्य वैध नागरिक होते हैं जिसकी स्वीकृति अन्य राष्ट्र भी करते हैं और पासपोर्ट, वीसा आदि की व्यवस्था से आवागमन को नियंत्रित करते हैं. नागरिक के रूप में वैधानिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार के साथ कर्तव्य और दायित्व में भी भागीदारी होती हैं. समाज की नियति है कि जाति, भाषा, बोली, क्षेत्र, भोजन, वस्त्र, रीति-रिवाज, धर्म आदि की विशेषताएँ आ जाती हैं. इनके साथ समाज का भावात्मक लगाव होता है और उसके सदस्य स्वयं को उसी आधार पर परिभाषित भी करने लगते है. चूँकि इन विशेषताओं का संचार, पारस्परिक संबंध और जीवन के विविध व्यापारों से गहरा रिश्ता होता है इसलिए ये उस समाज की पारिभाषिक विशेषताएँ बन जाती हैं.

भारत देश हमारे समक्ष एक सभ्यता और मूल्य दृष्टिसंपन्न सामाजिक इकाई के रूप में उपस्थित होता है. इसकी समझ कई रूपों में मिलती है. निकट इतिहास में झाँकें तो पाएँगे कि इसके कई रूप हैं. एक छोर पर हिंदू उपलब्धि को बलपूर्वक रखने वाले तिलक, अरविंद, सावरकर और विपिन चंद्र पाल जैसे हैं. दूसरी और गोखले, रानाडे, गांधी और टैगोर सरीखे आध्यात्मिक विचार को मानने वाले हैं जो सभी प्रभावों को आत्मसात करने को तैयार हैं. ये सहिष्णुता, आत्मनियंत्रण आदि के साथ एक तरह की बहुलता को ठीक मानते हैं. तीसरी ओर आधुनिक दृष्टिसंपन्न नौरोजी और पंडित नेहरू जैसे लोग हैं जो भारत को एक विकसित सभ्यता तो मानते हैं पर यह भी महसूस करते हैं कि उसका ह्रास भी हुआ और उसमें बहुत कुछ आधुनिक जीवन दृष्टि के विपरीत हुआ जो आज उपयोगी नहीं है. उनके हिसाब से एक बहुलतावादी आधुनिक नजरिया जो विज्ञानसम्मत हो, उपयुक्त ठहरता है.

आज हर भारतीय की एक बहुआयामी पहचान बनती है. वह हिंदू, बंगाली, मुस्लिम, गुजराती, कश्मीरी, बिहारी ब्राह्मण, ओबीसी, जैन, ईसाई आदि वाली एक साथ कई तरह की पहचान रखता है. ये भिन्न भिन्न पहचानें अक्सर एक दूसरे की विरोधी न होकर पूरक होती हैं. सांस्कृतिक रूप से वे गहरी पैठी हैं और उनके साथ लोगों का गहरा सार्वजनिक लगाव भी है. वस्तुतः हर भारतीय की पहचान (आइडेंटिटी) की अलग व्यवस्था है. कोई एक यूनीफार्म पैमाना नहीं है जो यह तय करे कि कई पहचानों में से कौन सबसे ऊपर 'नंबर वन' पर है. यह एक बड़ा तरल या 'फ्लुइड' मामला है. आज पूजा-पाठ संगीत और स्वास्थ्य लाभ के अनेक केंद्र भारत भर में फैले हुए हैं जहाँ आने जाने से हिंदू, ईसाई, सिख और मुसलमान किसी को भी परहेज नहीं होता. कई पहचान के साथ रहना अस्पष्टता तो पैदा करता है, पर शायद दूसरों के लिए. वस्तुतः हर भारतीय कई (उप) संस्कृतियों में जीता है और ये सब मिलकर उसकी पहचान बनाती हैं. इस अर्थ में हर भारतीय शायद बहुसांस्कृतिक है और उसकी पहचान बहुआयामी.

देश की छवि देशवासियों के आत्मगौरव का माध्यम होती है. आज के भारत का अंग होना, उसे 'बिलांग' करना हमको आर्थिक प्रगति की ओर अग्रसर एक देश, एक आर्थिक 'पावर' के साथ जुड़ने का

एहसास देता है. दूसरी ओर भ्रष्टाचार, अशिक्षा, अव्यवस्था, सामाजिक कुरीतियों और भेदभाव के कारण मन में थकान, उदासीनता और असहायता की भावना भी आती है. इस सबके बावजूद एक भारतीय का बोध जरूर है जो पंजाबी, मराठी या गुजराती होने, अलग जाति, वर्ग और समुदाय का सदस्य होने पर भी सबको भारतीय बनाता है. कभी-कभी 'विविधता में एकता' वाले नेहरू जी का भारत अपरिभाषेय या अव्याख्येय लगता है. भारत को एक विस्तृत सांस्कृतिक इकाई के रूप में देखने पर कुछ विचार उभरते हैं जो भारतीय होने के अर्थ को स्पष्ट करने में सहायक होते हैं. इनमें प्रमुख हैं धर्म, कर्म, पुनर्जन्म को किसी न किसी रूप में स्वीकारना, सामाजिक इकाई - परिवार, जाति, समुदाय के स्तर पर अपने अस्तित्व को महसूस करना, सेक्स, विवाह और अन्य व्यक्तियों के प्रति खास दृष्टिकोण को अपनाना, बहुलता का स्वीकार और खुले, कुछ-कुछ असंगठित किस्म की आत्म या सेल्फ की अवधारणा का स्वीकार और किसी न किसी रूप में किसी बड़ी ज्ञात-अज्ञात सत्ता से जुड़ाव की अभिलाषा और परिवेश, प्रकृति और सृष्टि के साथ साझेदारी तथा परस्पर अनुपूरकता का भाव.

समकालीन विमर्श में राज्य और राष्ट्र की अवधारणा के अर्थ बहुत कुछ इस पर निर्भर करते हैं कि कौन किस दृष्टिकोण और प्रयोजन से इन पर गौर कर रहा है. अक्सर इन्हें अतीत, वर्तमान और भविष्य से जोड़ कर देखा जाता है और लोग अपने चुने वैचारिक आदर्श से रँग कर ही इस पर विचार करते हैं. इन शब्दों और इनसे जुड़े अर्थ स्थान और समय के साथ-साथ बदलते रहे हैं जो स्वाभाविक है. 'भारत देश' के बारे में सोचने की एक बड़ी मुश्किल यह है कि हमारी अपनी परिभाषा के पैमाने हमारे अपने न होकर किसी और के दिए हुए हैं. वे हमारे बौद्धिक मानस में इतने गहरे पैठ चुके हैं कि अब हम अपने पैमाने के बारे में भरोसा ही नहीं कर पा रहे हैं और खुद को परिभाषित करने का अधिकार ही खोते जा रहे हैं. आर्थिक और तकनीकी प्रगति के पसराव की दुनिया में आज हमारा आत्म-संशय इतना गहराता जा रहा है कि 'भारत' और 'भारतीयता' की बात करना पुरानी और दकियानूस और इसलिए अप्रासंगिक मानी जाने लगी है. अगर इसकी बात करनी भी है तो उसकी सनद कहीं और से जुटानी होगी. आज अपनी पहचान के लिए हम पश्चिमी देशों में विद्वानों के द्वारा प्रमाण और गवाही चाहते हैं. आज भारत की सांस्कृतिक विविधता को संपन्नता और समृद्धि के स्रोत के रूप में समझने समझाने की जरूरत है जिसका उपयोग समाज के विकास में किया जाय. इसके लिए भारत को भारत के नजरिए से देखना होगा, बिना इस भय के कि भारतीय होना किसी क्षमा याचना की अपेक्षा करता है. स्वदेशी और सुराज जैसे विचार अभी भी प्रासंगिक हैं. समर्थ और स्वावलंबी होने के लिए आत्म स्वीकार और सतत परिष्कार आवश्यक है.

भूकंप का संदेश

डॉ. एम.एल. गुप्ता "आदित्य"

धरती हर दिन डोल रही है, कंपन की बोली बोल रही है।
विनाश कर आक्रोश से, बदल क्यूँ भूगोल रही है।
क्यूँ धरती ने भृकुटी तानी, क्यूँ हिमालय में आवेश।
कुदरत ने लिख भेजा है, भूकंप का संदेश।।

जो संसाधन थे पोषण के, उनका शोषण कर डाला।
ओजोन का जो कवच था, उसका भी भेदन कर डाला।।
बेरहमी से काटे हमने, वसुंधरा के वन-केश।
कुदरत ने लिख भेजा है, भूकंप का संदेश।।

सागर के तीरों को छीला, पठार और पर्वत को लीला।
नदियाँ बनीं नाले और नाली, नहीं दिखता जल निर्मल-नीला।।
चेतावनी दे रहा है मौसम, बदला भूमंडल का परिवेश।
कुदरत ने लिख भेजा है, भूकंप का संदेश।।

विज्ञान की सीढ़ी चढ़, विनाश का सामान बनाया।
परमाणु संयंत्र दे रहे यातना, विकीरण का खतरा मंडराया।।
रेडिएशन से आतंकित हैं, दुनिया के सब देश।
कुदरत ने लिख भेजा है, भूकंप का संदेश।।

कोई अणु, कोई परमाणु, कोई हाईड्रोजन बम ले ऐंठा है।
बिछी हुई बारूद धरा में, मानव बमों के ढेर पर बैठा है।।
हुआ परमाणु युद्ध तो, मिट जाएँगे कितने देश।
कुदरत ने लिख भेजा है, भूकंप का संदेश।।

भक्षक बनकर मानव, इक दूजे पर चोट कर रहा।
परीक्षण की खातिर कितने, भीषण बम विस्फोट कर रहा।।
प्रकृति का संतुलन बिगड़ा तो, हम बन जाएँगे अवशेष।
कुदरत ने लिख भेजा है, भूकंप का संदेश।।

कुदरत कहर बरपा सकती है, कभी भी आफत आ सकती है।
धरा की जरा सी भी हरकत, कितना कोहराम मचा सकती है।।
धरा ने जरा करवट बदली, तो कुछ भी न रहेगा शेष।
कुदरत ने लिख भेजा है, भूकंप का संदेश।।

पर्यावरण के आघात पर, अब तो रोक लगानी होगी।
सागर, पर्वत, धरती के संग, बंद करनी मनमानी होगी।।
धरती को जो माँ मानोगे, सब मिट जाएँगे क्लेश।
कुदरत ने लिख भेजा है, भूकंप का संदेश।।

वे दोनों

डॉ. सुषम बेदी

छत से फर्श तक के लंबे शीशों से जड़ी उस बड़ी-सी बैठक में खूब सारी दिन की रौशनी भरी हुई थी। फर्श पर बिछी सफेद चादरों पर सफेद वस्त्र पहने ढेर सारे लोग उस रौशनी का ही हिस्सा लग रहे थे। कमरे में घुसते ही तारक को लगा जैसे उस श्वेतता में घुले मौत के सर्दपन और जड़ता ने अचानक उसके भीतर को जकड़ लिया है। बीचोंबीच फूलों की माला चढ़ी एक बड़ी-सी रति की तस्वीर थी जिसका धूप, दीप और गीता के श्लोकों से अभिषेक किया जा रहा था। रति अब तस्वीर भर थी! तारक की स्तब्ध पनियायी आंखें निस्सहाय-सी रजत को खोजने लगीं।

रजत सारा वक्त लोगों से घिरा ही रहा था। उसकी मां, उसके बच्चे और दूसरे रिश्तेदार, कोई न कोई उसके आसपास था ही। उन दोनों की आंख एक दूसरे से दो एक बार मिली। पर रजत अपने से बाहर नहीं आ पाया था। तारक ने किसी तरह अपनी शोकभावना व्यक्त कर दी थी। न भी व्यक्त करता तो क्या, रजत को तो खुद भी अहसास होगा उसकी अंतर्भावना का। एक वही तो है इस भीड़ में जो जानता है कि वह क्यों यहां है। बाकी तो तारक किसी से परिचित ही नहीं। सिवाय कुछेक रति के कुलीग्ज के। एक दो कुलीग्ज से ही उसकी बात हुई रति के बारे में। वे उसे परिवार का मित्र मानकर बात कर रहे थे। यूं परिवार का मित्र तो वह था ही, पर इससे अलग या ऊपर भी कुछ था, यह शायद रजत के अलावा और कोई नहीं जानता था। जबकि रजत भी पूरा कहां जानता है, खास तौर से वह सब कुछ जो तारक महसूस करता रहा है, या जो कुछ तारक और रति के बीच में रहा या अभी भी जिसका बहुत कुछ बचा था।

यूं तारक ने बहुत बार सोचा कि अब रति नहीं रही तो उसके यहां जाने का कोई फायदा नहीं, उसकी तकलीफ बढ़ेगी ही, फिर लगा कि नहीं उसे रजत से मिलने जाना होगा। रजत भी तो उसका दोस्त है। यूं रति उन दोनों के बीच न होती तो वे शायद बहुत गहरे दोस्त हो सकते थे। फिर भी वह खुद को कई तरह से रजत के करीब महसूस करता था और रजत भी बहुत मामलों में उसी से सलाह करके चलता था। उस पर भरोसा करता था जो कि उसके मन के दोस्ती के भाव को ही जताती थी। चूंकि तारक की विशेषता दिल के रोगों में थी, वह रति के हार्टअटैक के बाद से उससे अकसर रति के बारे में सलाह लेता। यहां तक कि रति से भी कोई शिकायत होती तो तारक से ही कहता, "देखो न, इसका कोलेस्ट्राल इतना हाई चल रहा है और मैडम चीज, मीट सभी कुछ खाती है। अभी रेस्तरां ले चलो पूरा का पूरा स्टेक गटक जायेगी। कैसे करूं, यह तो खुद को नुकसान पहुंचाने से बाज नहीं आती।" और तारक तब टिका देता, "कैसी डाक्टर हो तुम रति? मरीजों को उपदेश देती रहती हो और खुद..."फिर उसने खुद ही एक विशेषण गढ़ा था रति के लिए 'नानकंप्लायंट' यानी कि जो कुछ भी कहा जायेगा उसका विरोध ही करेगी रति। और किसी वजह से नहीं बल्कि विरोध करने के लिए विरोध!

तब रति और भी तेवर चढ़ाकर बोलती, "रजत तो पहले ही मेरे पीछे पड़ा रहता है, अब तुम भी इसी से मिल गये हो। वाह जी वाह! दोस्त किसके हो तुम? मेरे या रजत के?"

तारक तब चुप रह जाता था, रजत भी कुछ नहीं कहता। एक प्रिय अप्रिय सत्य!

शायद रति भी इसीलिए कहती थी कि तारक तब लाजवाब हो जायेगा। क्योंकि रति जानती है कि जो वह तारक के लिए है वह और कोई नहीं हो सकता, और रजत को भी इसका अंदाज है। इसी से रजत ने शुरू में चाहे कितना विद्रोह किया हो, कितना लड़ाई झगड़ा... फिर धीरे-धीरे मान लिया था इस रिश्ते

को। रति के लिए ही अंगीकार कर लिया था तारक को भी। रति ने ही उसे बतलाया था जब रजत ने उसे बांहों में भरकर कहा था, "इतना प्यार करता हूं तुम्हें कि यह भी स्वीकारने के लिए राजी हूं।"

एक हूक-सी उठी थी तारक के भीतर... जिसे इतना प्यार मिला हो... इतना... वह इस तरह से उन दोनों की जिन्दगी को ही सूना करके रुखसत हो ली। तारक के मन में गुस्सा भी आया... शायद अपनी सेहत का ध्यान रखती तो कुछ और जी जाती! उन दोनों से ही तो चार-पांच साल छोटी थी वह, जी भी सकती थी! पर अब... और तारक ने लंबी सांस भरी।

रति की एक कुलीग बता रही थी, "परसों तो काम पर आयी हुई थी रति। मैं सोच भी नहीं सकती थी कि इतना भारी स्ट्रोक हो सकता है कि एक ही लपेट में ले जाये... मुझे तो विश्वास ही नहीं होता।" तारक को भी विश्वास नहीं होता था। उसी दिन सुबह रति ने उससे फोन पर बात की थी और उससे मजाक किया था, "मेरे जन्मदिन पर आओगे?"

दरअसल सारा झगड़ा कुछ साल पहले रति के जन्मदिन को लेकर ही शुरू हुआ था, वर्ना शायद रजत को उन दोनों के बीच बढ़ते रिश्ते की तनिक खबर न लगती। रति ने उसे बतलाया था कि उसके जन्मदिन पर वह और रजत आमतौर पर शाम को बाहर किसी बढ़िया से फ्रेंच रेस्तरां में खाना खाने जाते हैं, तब तारक ने कहा था, "ठीक है तो लंच तुम मेरे साथ लेना।"

रति मान गयी थी। उसने उसी दिन रति के शहर पहुंचने के लिए फ्लाईट भी बुक करवा ली थी, पर जब ठीक जन्मदिन आनेवाला था तो रति ने उसे बतलाया था कि रजत को ठीक नहीं लग रहा मेरा तुम्हारे साथ लंच पर जाना। वह पूछ रहा था कि इतना इम्पॉर्टेंट कैसे हो गया यह आदमी कि तुमको उसे जन्मदिन पर जरूर मिलना है।

"तुमने क्या कहा?" तारक जिज्ञासु हो उठा था।

"यही कि तुमको किसी काम से शहर में होना था इसलिए लंच पर मिलने की बात की। इस पर उसने कहा कि अगले दिन मिल लो। जन्मदिन वाला दिन तो उसी के लिए है... कोई और क्यों?"

फिर वह बोली, "इसी पर उसे शक हो रहा है कि यह कोई आम दोस्त नहीं..."

तारक ने जोड़ दिया था, "प्रेमी है।"

"हां यही शक हो रहा है उसे!"

"तो हूं या नहीं..."

"शायद हो... यही मुसीबत है।"

तारक ने कहा था, "अब तो टिकट ली हुई है। मैं तो आऊंगा ही, तुम मिल सको तो मिलना वर्ना न मिलना। चाहे पांच मिनट के लिए या कॉफी के लिए भी आ जाओगी तो मेरे लिए वही काफी होगा। तुम्हारे जन्मदिन पर तुम्हें देख भर लूं।"

"तुम भी कमाल के रोमांटिक हो... पर सच कहूं तो मैं भी तुमसे मिलना चाहती हूं उस दिन... कुछ न कुछ तो जुगाड़ना पड़ेगा।"

"मेरे लिए तुम्हारा जन्मदिन मेरी जिन्दगी का बहुत अहम् दिन है... समझी।"

एयरपोर्ट पहुंच कर तारक ने फोन किया था। रति बोली थी, "रजत कह रहा है तुम हमें डिनर पर जॉयन कर लो।"

तारक बहुत हैरान हुआ था, पर रति ने फोन रजत को पकड़ा दिया था। तारक एकदम संकट में पड़ गया था। उसने खुद को बचाने की कोशिश की, "सॉरी मैं तो यहां आया था तो सोचा रति से मिल लूंगा। पर इस तरह आप लोगों के प्रोग्राम में...।"

रजत ने जोर देकर कहा था, "नहीं भाई, बहुत तारीफें सुन रहा हूं बीवी से, जरा हम भी तो मिलें आपसे। आप चाहें तो घर पर आ जाईए या फिर सीधे रेस्तरां पर मिलेंगे।"

"पर आप लोगों का तो डिनर पर साथ जाने का कार्यक्रम था न।"

"आप लंच पर फ्री हैं तो लंच पर मिल लेते हैं। यूं मुझे तो डिनर ही पसंद है, जैसा आप कहें।"

रजत बिलकुल दोस्ताना ढंग से बात कर रहा था। एक पल को उसकी टोन में कुछ तनाव तारक को महसूस हुआ था पर अगले ही पल आवाज फिर सहज हो गयी थी। तारक मान गया पर टैक्सी लेकर पहले होटल में सामान छोड़ा और इस दौरान खुद को मानसिक तौर पर तैयार भी करता रहा कि कैसे पेश आना है अपने रकीब से। देखा जाय तो रिश्ता रकीब का ही था। बाकी वे कितने भी सभ्य या समझदार इंसानों की तरह एक-दूसरे से बर्ताव करें, आखिर वे तीनों सम्मानित पेशे के थे। तारक हार्ट स्पेशलिस्ट था तो रजत अंग्रेजी साहित्य का प्रोफेसर और रति सायकायट्रिस्ट। इंसानी मन की कमजोरियों को समझना, मनोरोगों का इलाज करना रति की विशेषता तो थी ही, पर इंसानी आकर्षण, एक दूसरे के प्रति खिंचाव या ऐसे रिश्तों को समझने की संस्कृति तो कहीं तीनों में ही थी।

रजत इस बात को खूब समझता था कि किसी भी औरत के लिए किसी दूसरे पुरुष के प्रति खिंचाव हो जाना बहुत सहज था, वहीं एक पति और पत्नी से प्रेम करने वाले के रूप में वह रति के इस व्यवहार से ईष्यालु भी हो उठता था। एक सभ्य इंसान के नाते वह ईष्या को दबा कर तारक के प्रति भी मित्रवत व्यवहार करना चाहता था पर वहीं उसे रति के व्यवहार से कष्ट पहुंचता था कि वह उसके अलावा भी किसी दूसरे पुरुष को चाह सकती है, जिससे उसके मन में आक्रोश और वितृष्णा का भाव उठता, कभी वह अपने को उदार बना कर यह कहना चाहता कि रति अगर किसी दूसरे को चाहती है तो बेशक उसको भी क्यों न पाये। साथ ही जब क्रोध होता तो एक तरह से जैसे वह रति को सजा देने के लिए कह डालता, "तुम जाओ, दोनों साथ रहो।" पर जो पीड़ा वह उसमें सह रहा होता वह रति और तारक दोनों के लिए ही असह्य होती।

रति ने कहा था, "क्या तारक और मैं दोस्त नहीं हो सकते? और इतने दोस्त है... एक वह व्यक्ति जिससे बात करके मुझे खुशी मिलती है वह दोस्त क्यों नहीं बन सकता। सिर्फ इसलिए कि उसके मन में तीखी भावना है मेरे लिए... या शरीरों का आकर्षण भी है..."

रजत तब तर्क से सारी बात को समझने समझाने की कोशिश करता। हां करते-करते कह देता, "औरत आदमी में दोस्ती हो ही नहीं सकती क्योंकि जहां शरीरों का आकर्षण हो वहां दोस्ती जैसा निष्कपट भाव कैसे पनप सकता है?" तब रति दोस्ती का एक और पक्ष पेश करती, "तुम्हारे कहने का मतलब तो वही दकियानूसी बात हुई कि शरीर पाप का मूल है जबकि तुम खुद ही यह पहले कह चुके हो कि शरीरों का मसला हल हो जाये तो औरत मर्द बहुत खुबसूरत दोस्त हो सकते हैं... शरीर को अहमियत दी क्यों जाये? शरीर मिल जाने से उनका दोस्ती में बाधा बनने का मसला खत्म हो जाता है।"

रजत रति की बात मान भी जाता था, पर रति फिर तारक को यह भी बताती थी, "वन कांट टेक हिम फॉर ग्रांटेड। कल को वह अपना कोई नया तर्क दे देगा।"

शायद इसी से तारक भी अचानक हिम्मत हारने लगा था। कैसे सामना करेगा वह रजत का? यूं वह रजत से एकाध बार पहले मिल चुका था पर तब उसको यह अंदाजा नहीं था कि रति और उसके बीच कुछ था, जबकि तारक तब भी कुछ आत्मसजग-सा हो रहा था पर कुछ मिनटों की मुलाकात को संभाल लेना कोई बड़ी बात नहीं थी और यूं भी रजत उसे भला आदमी लगा था। यह भी सोचा था कि अगर रति उन दोनों के बीच न होती तो यह व्यक्ति उसका दोस्त हो सकता था। यूं रति के होने के बावजूद अंतत: वे दोस्त बने ही पर इस दोस्ती का तानाबाना वैसा न था जैसे खालिस दोस्ती का होता

है। इसमें रति के रेशे बुने हुए थे, जो एक और ही रंगत लिए थे और वह रंगत तारक को बहुत प्यारी थी, उस दोस्ती से ज्यादा।

तारक ने होटल पहुंच कर फोन कर दिया था कि डिनर पर मिलना ही ठीक रहेगा और वह अपना काम इस दौरान कर लेगा। रजत आसानी से यह बात मान गया और कहा कि वह ड्रिंक्स पर पहले घर पर आ जाये, उसके बाद रेस्तरां खाना खाने चले जायेंगे।

शाम को जब वह चलने लगा तो फोन बजा था। दूसरी ओर रति थी, हैलो कहते ही रति ने कहा, "सुनो तुम मत आना, मेरे घर में बहुत टेंशन चल रही है।" इससे पहले कि वह कुछ कहता रति ने फोन डिसकनेक्ट कर दिया।

रात को कोई फ्लाईट नहीं जाती थी वर्ना वह उसी वक्त शहर छोड़ के चला जाता।
आधे घंटे बाद ही घंटी फिर बजी। रति पूछ रही थी कि आ रहे हो? तारक बौखला गया कि आखिर हो क्या रहा है? क्या यह रति के मन की उलझन है या कि रजत की... या दोनों की... या रति सिर्फ रजत की उलझन को व्यक्त कर रही थी। बोली थी, "जल्दी आ जाओ, हम लोग इंतजार कर रहे हैं।"

वह पहुंचा तो रति ने अकेले ही उसका स्वागत किया था। वह जानता था कि दोनों बच्चे कालेजों में हैं पर रजत काफी देर तक बैठक में नहीं आया तो तारक हैरान हुआ। रति बोली, "वह नहा रहा है।" फिर मुस्करा कर जोड़ा, "शायद हम दोनों को कुछ वक्त देना चाहता है।"

तारक तब कुछ नर्वस हुआ था। उसे आगे बढ़कर रति को चूमने का हौसला नहीं हुआ। उसे लगा कि रति भी सहज नहीं थी जैसे कि आम तौर पर होती है, पर उसने कुछ कहा नहीं। वह खुद भी तो सहज नहीं हो पा रहा था, जैसे लड़की के बाप के घर में शादी का प्रस्ताव लेकर जा रहा हो, कुछ कुछ इसी तरह का महसूस हो रहा था। वहीं डट कर परचा करना था कि इम्तहान में फेल न हो जाये।

रजत ने कमरे में आते ही बड़े तपाक से हैलो किया, कुछ औपचारिक-सी बात की। फिर उससे ड्रिंक पूछा और किचन में बर्फ वगैरह का इंतजाम करने के लिए फिर से गायब हो गया। तारक को लगा कि सहज होने की बहुत कोशिश के बावजूद रजत बहुत असहज है।

व्हिस्की का घूंट लेते हुए तारक ने ही रजत से उसके काम के बारे में पूछना शुरू किया। बात कही जा नहीं रही थी, तभी रति एक नई किताब की चर्चा करने लगी जिसका रिव्यू सुबह के अखबार में छपा था। तारक ने हवाई जहाज में ही उसके बारे में पढ़ा था, फिर तो बातचीत खूब गरमागरम होने लगी। रजत ने दक्षिण एशियाई अंग्रेजी लेखकों के बारे में अपने विचार झाड़ने शुरू कर दिये। यहां तक कि रति ने अचानक घड़ी देखी तो पता चला कि रेस्तरां की रिजर्वेशन का वक्त हो चुका था। रजत ने रेस्तरां को फोन किया कि कुछ मिनट लेट पहुंचेंगे और तारक को बोला कि जल्दी से ड्रिंक खत्म कर ले या गाड़ी में ही ले चले। दोनों ने दो तीन ड्रिंक चढ़ा रखे थे। मौज-सी भी आयी हुई थी, रजत ही कार चला रहा था और तारक पीछे वाली सीट पर बैठा था। अचानक रजत कुछ नशे और कुछ अपनी धुन में बोला, "तो तुम मेरी बीवी से प्यार करते हो?"

तारक भौंचक-सा हो गया। यूं ही बैठा रहा जैसे रजत की बात को सुना न हो या वह गंभीरता से लेने लायक न हो। रजत ने अपनी बात को सवाल बनाकर दुबारा पेश किया, "क्यों तारक? मेरी बीवी से प्यार करते हो या नहीं?"
तारक ने कहा, "हां," और चुप कर गया। उसे लग रहा था वह जो भी जवाब देगा, खतरे से खाली नहीं, पर यह जवाब सच था, तो सच बोल कर ही मार खायी जाये। उसे किसी लड़की के पिता से हाथ मांगने नहीं जाना पड़ा था, आज यह भी सही।

"तुम भी प्यार करते हो, वह भी करती है तो तुम दोनों साथ क्यों नहीं रहते?"

तारक बोल पड़ा था, "यह इतना आसान नहीं।"

रजत इस पर आक्रमण करता-सा बोला, "कमाल है! प्यार भी करते हैं और जिम्मेवारी भी नहीं निभाना चाहते।" तारक को महसूस हो रहा था कि रजत कह तो कुछ रहा है और पहुंचाना कुछ और चाहता है। फिर भी, वह जवाब तो उसी बात का दे सकता था जो कि पूछी जा रही थी। यह कह कर उसे नाराज भी नहीं करना चाहता था कि रजत सिर्फ अपने भीतर के आक्रोश, आतंक और आग को आवाज दे रहा था। बोला, "यह बात नहीं, मैं आज भी रति के साथ जिन्दगी शुरू करने को तैयार हूं। जहां तक मैं जानता हूं रति अपने शहर को छोड़ कर और कहीं नहीं जायेगी, न वह तुमको छोड़ने को तैयार होगी, जहां तक मैं रति को जानता हूं...।"

रति चुपचाप अपने पर अंकुश लगाये दोनों की बात सुन रही थी। न तो वह रजत के पक्ष में कुछ बोलना चाहती थी न तारक के पक्ष में ही बोल सकती थी। फिर भी, दोनों के बीच तारतम्य बिठाये रखने की जिम्मेवारी भी उसी की थी और वह समझ नहीं पा रही थी कि किस तरह इस बातचीत को सीमायें लांघने से बचाया जाये। ऊपर से उसे डर लग रहा था कि आवेश में रजत कहीं टक्कर न मार दे। रेस्तरां बहुत दूर था भी नहीं। बात पूरे चरम पर चल रही थी कि रेस्तरां आ गया। रति ने टोका, "रजत पार्किंग ढूंढो, रेस्तरा आ गया।" रेस्तरां के साथ ही पार्किंग गैराज में गाड़ी छोड़ कर तीनों अंदर चले गये। वेटर ने उनको मेज पर बिठाया और ड्रिंक के लिए पूछा तथा मेन्यू लाकर दिये। तीनों के तीनों उस मेज पर इस तरह खामोश और भरे बैठे थे कि मेन्यू में सिर डुबोना एक राहत बन गया था। तीनों ने अपने-अपने आर्डर दिये पर बात कुछ बन नहीं रही थी। हर कोई कुछ भी कहने में ज्यादा ही सतर्क हो रहा था।

अचानक रति बोली, "रजत, तुमको इतनी ज्यादा तकलीफ थी तो तुमने मना क्यों नहीं कर दिया। मैं तो तारक को कह चुकी थी कि आज साथ खाना नहीं होगा। तुम्हीं ने जोर दिया कि जरूर बुलाओ, अब इस तरह क्यों बर्ताव कर रहे हो।"

रजत और भड़क गया, "मैं तो सिर्फ यह कह रहा हूं कि तुम लोग एक-दूसरे को प्यार करते हो तो मैं क्या कर रहा हूं यहां? तुम जाओ एक दूसरे के साथ रहो।"

दोनों की आवाजें ऊंची हो रही थीं और दूसरी मेजों पर बैठे लोगों की निगाहें इस ओर उठ आयी थीं।

तारक ने धीरे से सुझाया था, "मेरे खयाल से हमें ये बातें यहां नहीं करनी चाहिए।" सहसा रति ने होश में आते कहा, "हां इतने बढ़िया रेस्तरां में खाना खाने आये हैं। कुछ खाने पर भी तो ध्यान दें... फिर आज मेरा जन्मदिन है, आई वांट टू हैव ए गुड मील।"

फिर भी खाने पर तीनों में से किसी का ध्यान नहीं लग सका। तीनों औपचारिक-सी बात में लग गये थे। तारक ने ही शहर के नवीनतम रेस्तरांओं के बारे में ताजा पढ़ी समीक्षा का जिक्र छेड़ दिया था।

रजत ने कार से जब उसे होटल छोड़ा तो तारक ने उपर कमरे में आकर ड्रिंक लेने के लिए कहा पर जैसा कि वह अपेक्षा कर रहा था रजत ने देर होने का बहाना बना छुट्टी मांग ली थी। रति तब भी कुछ नहीं बोली थी, शायद उसे डर था कि उसका कुछ भी कहना रजत के लिए घाव पर नमक छिड़कने जैसा होगा, या उसकी कोई भी बात का गलत मतलब निकाल कर रजत भड़क सकता था। यूं देर हो भी चुकी थी।

पर तारक यह भी जानता था कि रति एक नंबर की जिद्दी थी, जो उसे चाहिए था, चाहिए ही था, उसे रोका नहीं जा सकता था। वह ऊपर से मान जायेगी पर भीतर से कभी माफ नहीं करेगी। शायद इसी से रजत भी बिगड़ी हुई लाड़ली बेटी की तरह रति की हर चाह या मांग को विरोध करके भी अंतत: मान जाता था।

लौट आने के दो चार दिन बाद ही उसके फोन पर रति ने संदेश छोड़ा था, "तुम्हारा आना ठीक नहीं हुआ। सॉरी, तुम्हें बुलाकर भी मिल नहीं पायी। अब लगता है कभी नहीं मिलूंगी। लैट अस स्टॉप दिस हियर, प्लीज मुझसे संपर्क मत करना।"

तारक बहुत दिन परेशान घूमता रहा था, पर रति को फोन भी नहीं किया, उसने मना जो कर डाला था। उसे फोन करते हुए तारक को लगता कि वह खुद को उस पर लाद रहा है और यह स्थिति उसे कभी गवारा नहीं थी। हर दिन किसी ज्वालामुखी-सा लावे से लदा हुआ गुजरता। अंदर ही अंदर सब तप रहा था।

महीने भर बाद रति ने फोन किया था, "गुस्सा हो न मुझसे, तुमसे माफी भी नहीं मांग सकी।"

"उसकी तो कोई जरूरत नहीं।"

"फिर भी, सोचा था तुमसे कभी बात नहीं करूंगी। इसी से तुमको संपर्क करने से मना किया था। रजत को भी यही मालूम है कि तुमसे रिश्ता तोड़ दिया है पर अब मुझी से बात किये बिना रहा नहीं जा रहा।"

"रजत को मालूम है मुझसे बात कर रही हो?"

"वह बेहद गुस्सा है तुमसे... जैसे कि सारा दोष तुम्हारा हो... कि तुमने उसकी बीवी को फंसा लिया।"

वे इसी तरह जब मौका लगता बात कर लेते। तारक के दिल दिमाग पर रति ही छायी रहती। वह ऐसे ही पलों के दौरान जीता जब दोनों के बीच कुछ संपर्क होता, बाकी के पल उन पलों के इंतजार में गुजरते।

इस बीच रति को दिल का दौरा पड़ा था। घबराकर तारक को फोन कर डाला था रजत ने। तारक आया तो रजत उसे अपनी गाड़ी में साथ अस्पताल ले आता जाता रहा। दोनों में एक दोस्ती का नाता तभी बना था। दुनिया जहान की बातें, रजत ने उसे घर पर ही ठहराया था। तारक तीन दिन बाद चला गया था वापिस, पर दोनों की फोन पर बात हो जाती। रति अस्पताल से वापिस आ गयी थी। धीरे-धीरे वह सामान्य होकर वापिस अपना काम संभालने लगी।

रति का जन्मदिन फिर से आनेवाला था। रति ने उसे कहा था, "रजत अपने आप ही बोल रहा है कि तुम आ जाओ इस बार मेरा जन्मदिन मनाने, बोलो आओगे?"

तारक पुरानी बात याद करके घबरा गया था, "नहीं। फिर से उसके भीतर सब घुमड़ने लगेगा... सबको तकलीफ होगी।"

यह सच भी था। रजत कभी तो उसके प्रति बहुत मित्रवत हो जाता, वहीं अचानक गुस्सा, ईर्ष्या उभर आते और वह अकसर बेरुखी दिखाता। अचानक तारक को ऐसा महसूस हुआ जैसे रति उससे खुद यह सब कह रही हो। पल भर को वह भूल ही गया कि रति के ही अंत्येष्टि कर्म में वह शामिल हुआ है और दरअसल उसके यहां आने की एक वजह यह भी है कि वह रति को लिखे अपने खत वापिस ले जाना चाहता है। उसे डर है कि कहीं वे खत रजत के हाथ न पड़ जायें।

तारक रति के साथ काम करने वाली इस महिला डॉ. लोपेज से पहले मिला हुआ था। इस भीड़ में एक वही जान-पहचान की थी। तारक का मन हुआ उससे पूछे कि क्या वह रति की दराज में उसके कागजात पर नजर मार सकता है। तारक को अंदाज था कि उसके खत वह दफ्तर की मेज की दराज में रखती थी। पर वह जानता था कि ऐसा करना मुमकिन था नहीं। आखिर तारक को कैसे हक पहुंचता था रति की दराज खुलवाने का, वह तो एक परिवार के मित्र की हैसियत से वहां था। रजत ही कह सकता था, देखा जाये तो वे लोग खुद भी रजत से ही कहेंगे कि रति का सामान वह ले जाये। तब तो रजत की आंख जरूर उन पर पड़ेगी, तब शायद उसको बुरा लगेगा कि रति के साथ तारक का एक अपना रिश्ता

था, उन तीनों की आपसी दोस्ती के बाहर...। रजत को बेतहाशा चोट लगेगी, अब जबकि वह रति से जवाबतलबी भी नहीं कर सकता। रति अब कोई सफाई नहीं पेश कर पायेगी। तारक के हक में कुछ भी नहीं कह सकेगी। किसी तर्क से रजत को लाजवाब नहीं कर पायेगी। नहीं वह ऐसा नहीं कर सकता, न यह रति के प्रति सही होगा न रजत के प्रति। उसे किसी न किसी तरह से खत पाने हैं।

रास्ते में आते हुए हवाई जहाज में तारक जब लगातार रति के साथ की अपनी जिन्दगी के गुजरे पल दुहरा रहा था, बार-बार उसे ध्यान आता कि जब से रति को दिल का दौरा हुआ था, वह उससे कहना चाहता था कि उसके खत विनष्ट कर दे। एक बार उसने बात उठायी तो रति बोली, "क्यों? तुम्हारे खत मेरे दफ्तर की दराज में सेफ पड़े हैं।"

शायद वह बिना कहे यह भी समझ गयी थी कि तारक का इशारा किस ओर है, तभी बोली, "देखो जब तक मैं जिन्दा हूं, मैं उनको फाड़ कर न तो फेंक सकती हूं न जला सकती हूं। एक बार मर गयी तो क्या फर्क पड़ता है कि कोई क्या करेगा उनके साथ। तुमको तो फिक्र होनी नहीं चाहिए, अब तो वे मेरी अमानत है।" यह बातचीत दो एक महीने पहले की ही होगी। तारक ने सोचा था बात कभी फिर उठायेगा, पर उससे पहले ही...।

तारक को भी तब यह अंदाज नहीं था कि रति के अलावा रजत से भी उसका नाता था। रति के जाने के बाद वह खुद को रजत के बहुत करीब महसूस कर रहा था और उसे लगा कि उसके खत रजत को उससे फिर दूर धकेल सकते थे। पर वह किसी तरह भी रजत को खोना नहीं चाहेगा... रजत जैसे से रति का ही एक हिस्सा था...उसने देखा लोगों से घिरा रजत का चेहरा बेहद निचुड़ा हुआ, रक्तहीन और सूखा-सा लग रहा था। रात भर सोया नहीं होगा इसलिए आंखों के नीचे कालापन उतर आया था। आंखें काफी अंदर को धंसी हुई थी, तारक को लगा कि वह शायद रजत से बेहतर हालत में है। फिर उसे रश्क भी हुआ, रजत अपने गम का खुला इजहार कर सकता है... तारक को यह सुविधा नहीं थी। वह किसी उजड़े आशिक के रूप में इस महफिल, इस मौत का शोक करने वालों की महफिल में... अपना असली चेहरा... अपना आशिक का चेहरा... नहीं दिखा सकता था। अचानक उसकी आंखें भर आयीं अपने खोने की शिद्दत के अहसास से।

रति के वाक्य उसके कान में सरसराने लगे। जबसे उसे दिल का दौरा पड़ा था, वह जीवन की क्षणभंगुरता या इंसान के नाचीज होने के अस्तित्ववादी दर्शन को बहुत बघारने लग गयी थी। शायद अपने जाने का अहसास उसे कहीं बहुत गहरे उदास कर जाता था। पर वहीं वह उस जाने को एक अवश्यंभावी, अकाटय सत्य की तरह स्वीकार करके उससे समझौता भी करने लग गयी थी। एक दिन उसने हडसन नदी के दूसरे सिरे से मैनहैटन की ओर देखते हुए कहा था, "देखो तो इन छोटे-छोटे डिब्बों में कितने लाखों लोग रहते हैं। कितने छोटे हैं हम लोग! इतनी तंग जमीन पर कितनी बड़ी तादाद में समा जाते हैं। एकदम हजारों की संख्या में साथ-साथ जुड़े कीड़ों की तरह! फिर भी अपने आप को कितना बड़ा मानते हैं! राजनीति, धर्म और नैतिकता की तख्तियां चिपका कर कितना बड़ा होने का भुलावा देते रहते हैं खुद को!"

रजत को रति की इंसान को नाचीज करार देने वाली बातों से हमेशा बहुत चिढ़ छूटती थी। बोला था, "धर्म, नैतिकता जीवन के सत्य हैं, इनको तुम भुलावा देने वाली चीज कैसे कह सकती हो? इंसान इसीलिए तो बाकी जीवों से अलग है कि वह सोच सकता है।"

"और सोच के धरातल पर हर चीज को गलत या सही साबित कर सकता है। नैतिकता को गढ़ सकता है या पूरा सत्यानाश कर सकता है... ठीक है, मुझे तो उसमें कोई नुकसान नहीं।"

"हां नुकसान किसी का है तो मेरा ही। रजत ने कहा तो तारक झट से बोल पड़ा था, "नुकसान तो तब होता जो मैं उसे भगा के ले जाता!"

रजत ने संजीदगी से कहा, "अब इसका दिल बंट गया है... तो आधी संपत्ति तो लुट ही गयी न! तुम भगा ले जाओ तो भी फर्क नहीं पड़ेगा। यह आधावाला हिस्सा तब भी यहीं रहेगा।"

सचमुच रजत का यह विश्वास सही था। रति और उसके रिश्ते की शुरुआत के दिनों में भावना के प्रवाह में बहता तारक रति के साथ एक नयी जिन्दगी के किवाड़ खोलने की बात सोच पाया था पर जल्द ही उसे अहसास हो गया था कि रति कहीं बहुत गहरे जुड़ी थी रजत के साथ कि वह कभी उस रिश्ते को तोड़ेगी नहीं। यूं रजत भी शुरू के दिनों में भीतर से हिल गया था। यह झटका कि रति रजत को छोड़ किसी और को मन में ला सकती है उसे बहुत दूर जा फेंक आया था। फिर रति ने खोये विश्वास को वापस लौटा दिया। रजत अपने आधे नुकसान के साथ धीरे-धीरे शायद समझौता करना सीख गया था।

तारक को लगा कि वह आधे के साथ समझौता करना सीख गया था। फिर तारक को लगा कि वह आधे के साथ समझौता नहीं था। रजत के भीतर कहीं पूरे का भरोसा भी था, जैसे कि रति को सिर्फ एक बदलाव चाहिए था, जो तारक था। वर्ना वह पूरी रजत की ही थी, क्योंकि मौका आने पर रजत अपना पूरा हक जताने से चूकता नहीं था। हमेशा यही मानता था कि पहला हक उसी का है। तारक हमेशा बाद में आयेगा, जैसे कि पेट भर लेने पर बचा हुआ भोजन किसी को भी दिया जा सकता है... कुछ ऐसा रुख।

पर रति बचा हुआ भोजन नहीं थी... किसी तरह से भी उच्छिष्ट या अवशिष्ट नहीं, जो उसने रति में पाया था वह पहले जिन्दगी में कभी नहीं मिला था। रति ने उसकी पहचान करायी थी परिपूर्णता से। रति को जानना ही जैसे उस संपूर्णता को छूना था। शायद रजत ने भी रति में ऐसा कुछ पाया था जो आम औरतों से अलग था। रति शादी के इतने बरस बाद भी उसे अपने में उलझाये थी और वह उससे मुक्त नहीं होना चाहता था। रति में बाहरी खूबसूरती के बावजूद व्यक्ति के दिमाग को भी उलझाये रखने का जो गुण था, उससे सच में जो भी पास आता, और खिंचता जाता। रति में भरपूर प्यार लेने की चाह थी तो भरपूर देने की क्षमता भी। इसी से अभी भी उससे जी तो नहीं भरा था रजत का.. शायद वह ऐसी औरत थी जो हमेशा नित नवीन होती रहे... सौंदर्य की एक परिभाषा यह भी तो दी गई है कि जो नित नूतन होता रहे वही सौंदर्य है। रति भी कभी पुरानी नहीं पड़ती। रोज कुछ नया होता है उसके पास... कोई नया ख्याल... कोई नई सूझ... कोई नई उकसाने उलझाने वाली बात... शायद इसे दिमागी सौंदर्य कहना होगा... जो कुछ भी उसमें था... बस खींचता था अपनी ओर... मोहता था... शायद क्या पर उंगली धरना उसे परिधि में बांधने की भोंडी कोशिश होती!

कुछ द्वंद्व उठता तो रति रजत के ही हक में बोलती थी। रजत के हितों को सुरक्षित कर लेने के बाद ही वह तारक को उसका हक देती। तारक को खीझ भी होती कि रजत उसके जीवन में चूंकि पहले आ गया था इसीलिए हर चीज में ही पहला हक उसी का बनता है। पर उसने रति से अपनी यह मन:स्थिति कभी जाहिर नहीं होने दी थी। पिछले साल वैलेन्टाईन डे पर ऐसा ही तो हुआ था। दरअसल दोनों को अंदाज नहीं था कि उस वीकेंड पर वैलेन्टाईन डे पड़ता था। तारक को किसी काम से रति के शहर आना था और दोनों ने मिलने का कार्यक्रम बना डाला था। रजत से रति की बात हुई होगी तो उसने भुनकर कहा था, "तो वह तुम्हारा वैलेन्टाईन है जो उस दिन आ रहा है।" रति के कहने पर कि उसे तो याद भी नहीं था, वह बोला था, "मैं नहीं मान सकता कि तारक ने यूं ही आने का बनाया है इस वीकेंड पर।" रति ने तारक से सारी बात बतलायी तो उसने सोचा था वह खुद फोन पर रजत से कहेगा कि उसे सचमुच याद नहीं था, पर फिर बात बढ़ाने न देने के लिए चुप रह गया था और जाने का

प्रोग्राम भी स्थगित कर डाला था। तब उसे दो बातें तकलीफ देती रही थीं, एक तो यह कि रजत हमेशा उसके सामने प्राथमिकता ले जायेगा, दूसरी यह कड़वी सच्चाई कि रति कभी भी उसकी जाहिरी जिन्दगी का हिस्सा नहीं बन सकती थी। उसकी कमर में हाथ डाल कर वह कभी किसी से यह नहीं कह सकता था "रति मेरी है।" तब उसे बेहद रश्क होता रजत से। क्या रजत को सचमुच अहसास है कि रति तारक के लिए क्या है, कि वह उसकी जिन्दगी का केन्द्र, उसकी जिन्दगी का अर्थ बन चुकी है। यह कोई हल्का-फुल्का ठरकपन नहीं, उसकी जिन्दगी का रेशा-रेशा गुंथ गया है रति से। शब्द में अर्थ की तरह समायी है रति उसके अस्तित्व में। इस गुथन में वह खुद ही घुटता रहेगा हमेशा।

अब रति नहीं है तो वह घुटन और भी कस रही है उसे! क्या अब वह रजत से कह पायेगा? अचानक उसका मन हुआ कि रजत से कह दे, "तुमको मालूम है कि मुझे सचमुच पता नहीं था कि उस दिन वैलेन्टाईन डे था, वर्ना ऐसी जुर्रत न करता।" कि वह जानता है... अच्छी तरह समझता है अपनी और उसकी टैरीटरी की परिधियों को! कि रजद शायद कभी जान न पायेगा पर उसने हमेशा एक दोस्त की तरह रजत का, रजत की जरूरतों का ख्याल रखा है... सिर्फ ऊपर-ऊपर से सामाजिक उपचार की तरह नहीं, भीतर से.. किसी दिली रिश्ते से... फिर वह रिश्ता चाहे रति के जरिये से ही बना हो!

हो सकता है रजत यह सब महसूस करता हो, या न भी करता हो! पर उसके चेहरे पर भी मित्रता का स्वागतमय भाव हमेशा दिखा है तारक को, सिवा उन क्षणों के जब कि सचमुच उन दोनों के बीच 'टेरिटोरियल' झगड़े हुए। तब भी वे शायद इंसानी आचार या परस्पर सद्भाव की सीमाओं को कभी लांघे नहीं। पर फिर भी तारक का रति के साथ का रिश्ता ऐसा नहीं कि रजत के साथ जिसे बांट सके। रति उसकी हस्ती का अभिन्न हिस्सा है। वह कोई और कैसे हो सकता है। रजत रति नहीं हो सकता, चाहे उसके कितने ही करीब रहा हो। उसे किसी न किसी तरह से अपने खत पाने ही हैं। लेकिन कैसे? और यहीं तारक बार-बार उलझ जाता है। अपनी यह परेशानी वह किसी के साथ बांट नहीं सकता! रजत से तो कतई नहीं। खत अगर सचमुच रजत के हाथ पड़ गये तो?

लेकिन रति ने यह भी तो कहा था कि अगर वह नहीं रही तो क्या फर्क पड़ता है? पर रजत सचमुच खत पढ़ ले तो... शायद उसकी पीड़ा पर तब क्रोध और घृणा का कोई विकराल भूत हावी हो सकता है... हो सकता है कि खत पढ़कर रजत रति को खुद से छिटक दे! लेकिन उससे क्या! तब शायद रति और भी तारक के करीब आ जाये। और भी उसकी अपनी हो जाये! सिर्फ उसी की समूची! एक रात पहले उसे ऐसा ही कुछ सपना आया था। रति की मौत की खबर के बाद यही उसका याद रह जानेवाला सपना था। वह रति की अंत्येष्टि में गया है और एक अंधेरा-सा बैठकनुमा कमरा है... कमरे में कुछ कागज बिखरे पड़े हैं... वह एक कागज उठाता है... वह उसी का रति को लिखा खत है... और कई लोग उसके आसपास हैं और वह सोचने लगता है कि कहीं इन लोगों ने भी तो उन्हें नहीं पढ़ा... तभी रजत का चेहरा उसकी ओर बढ़ता है और वह कागज छिपाने की तरकीब सोचने लगता है... इसी उधेड़बुन में उसकी आंख खुल गयी थी तो जिस्म पसीने में नहाया हुआ था।

एक रजत ही यहां उसके सबसे करीब है... और रजत ही उसे अजनबी-सा लगने लगा है। अब तक उसका रति का संदर्भ था, अचानक उस संदर्भ से कटकर न होने जैसा हो रहा है। तारक को अजीब-सी मानसिक दूरी और भयंकर अकेलापन-सा महसूस हुआ। वह यहां आया ही क्यों था? रति की नामौजूदगी में कितना बेमानी है उसका यहां होना। रजत को भी कितना फिजूल-सा लग रहा होगा उसका यहां उपस्थित होना, जिन लोगों से घिरा है वे तो सचमुच उसके अपने हैं... तारक तो दूर से भी अपना नहीं... मृत से तारक का जो भी नाता रहा हो... उसके किसी दूसरे से तो नहीं था। उसके कॉलेज

कामों से लौटे बच्चे भी तारक को पहचानते नहीं थे। तारक ने ही उनकी शक्लों और व्यवहार से अंदाज लगाया था और हॉलवे में लगी तस्वीरों से उन्हें पहचान पाया था।

तारक के पास रजत से कहने को कुछ नहीं था। उसका कुछ भी कहना रजत को खल सकता था। उलटे तारक को लगने लगा कि रजत शायद सोच रहा हो कि अब क्यों जख्मों को याद दिलाने आ गये हो! कुछ भी हो तारक ने उसे पीड़ा तो पहुंचायी ही थी। क्या अब उसका कुछ भी करना रजत के कष्ट को कम कर सकता था? उसने निगाहों से ही अपना दुख बयान कर दिया, जो शायद रजत ने स्वीकार भी लिया था... शायद एक औपचारिकता की तरह, जैसे वह दूसरे बहुत से जमा लोगों की शोकाभिव्यक्तियां स्वीकार रहा था... उससे कुछ अलग नहीं। शायद तारक का वहां होना ही रजत को खल रहा हो पर वक्त की नाजुकी की वजह से वह कुछ कहना न चाह रहा हो! तारक एकदम परेशान-सा उठ खड़ा हुआ।

कुछ लोग रजत के गले लग रहे थे, शायद उससे विदा लेकर जा रहे थे। तारक ने सोचा वह अब कहेगा कि रति के पास कुछ उसके जरूरी कागजात थे, अगर रजत उसे कागजों वाली जगह पर ले चले तो वह खुद ही देख लेगा। तारक यंत्र की गति से रजत की ओर बढ़ा। रजत जैसे किसी को देख कर भी देख नहीं रहा था। उसकी आंखें किसी शून्य पर टिकी थीं। तारक को लगा उन लोगों के घिराव में, जिसमें उसके अपने अजीज दोस्त और रिश्तेदार थे, रजत ने उसे कोई विशेष लक्ष नहीं किया। तारक के भीतर अजीब सूनापन-सा आ घिरा, लगा जैसे रति रजत में कहीं नहीं थी। सिर्फ भ्रम-सा हुआ था उसे उसके वहां होने का! जैसे कि उसके रति के नाते से वहां होने में ही कोई भारी असंगति थी। उसे लगा वहां बैठे अजनबी से लोग उसे घूर रहे थे। उसके वहां होने पर प्रश्नचिन्ह लगा रहे थे। पता नहीं कितने ही अजनबियों से घिर गया था तारक। यहां तक कि रति की उस तस्वीर में भी उसे रति नजर नहीं आ रही थी। वह भी कोई अजनबी छाया थी। यह दुनिया उसकी नहीं थी। अगर वह रति की दुनिया रही भी हो तो जिस रति को वह जानता था उस रति के लिए भी यह दुनिया अनस्तित्व थी, विसंगत थी।

उसने रजत को बहुत संभलते संभलते गले से लगाने की औपचारिकता की। उसे लगा जैसे वह किसी अजनबी को गले लगा रहा था। रति जितने उसके अपने पास थी, उतने और कहीं नहीं, किसी के पास नहीं। दरअसल रति और कहीं नहीं थी, उसके भीतर थी... बस। उसे रति को वहीं, अपने भीतर ही कहीं संजोये रखना था, भीतर ही खोजना था, भीतर ही तसल्ली करनी थी। किसी और से बांट नहीं सकता था रति को। रजत के दोनों कंधों को हल्के से दबाकर उसने धीरे से कहा, "टेक केयर" और मुड़ा तो बिना पीछे देखे बाहर निकल गया।

पासपोर्ट अमरीकन मेरो

ओम गुप्ता

पासपोर्ट अमरीकन मेरो, पर रंगत हिंदुस्तानी।
आज सुनाऊँ तुमको प्यारे, अपनी रामकहानी।।
छोड़ो भारत मैंने भैय्या, डॉलर देख-देख ललचायो।
चाट-पकोड़ी जब भी देखूँ, मोंह में पानी भर आयो।।
दीवाली पर दीप जलाउँ, होली पर खेलूँ रंग।
मौको जब मुझको लगतो, पीतो मैं भी भंग।।
कैसो होगी सरकार हमारी, मोकू हरदम चिंता।
जब भी देश पड़े संकट में, कृपा करो हनुमन्ता।।
पूजूँ मैं अब भी राम-कृष्ण, जातो मंदिर रोज।
गपशप यारों से करतो, फोकट में मिलतो भोज।।
योगी-बाबा आएँ देश से, जब देने मुझको ज्ञान।
आँख मूँद के, ना कुछ जाने, करतो उनको सम्मान।।
हेम्बर्गर अब भी नहीं भातो, भाती मुझे कचोड़ी।
जैसो जब भी मौका आयो, टोपी वैसी ओढ़ी।।
जाऊँ देश को जब मैं अपने, खाऊँ लड्डू और इमरती।
कहतो खुद को हिंदुस्तानी, अमरीका मेरी अब धरती।।
कहने को बहुत है भैय्या, थोड़े को समझो काफी।
बुरा-भला लगा जो तुमको, माँगू नतमस्तक माफी।।

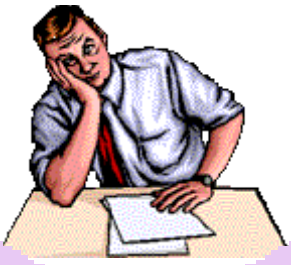

श्रीमद्भगवद्गीता राजधर्म का विश्वग्रंथ

यतीन्द्र नाथ चतुर्वेदी

भगवान का पंजीकरण नहीं हो सकता! भगवान की 'आकाश-वाणी' का राष्ट्रीयकरण नहीं होता। सूर्य किस देश की राष्ट्रीय संपत्ति है! चन्द्रमा किसकी धरोहर है! धरती की चौहद्दी बाँट चुका इंसान जल बांध रहा है, अग्नि पर काबिज सभ्यता आकाश को नथ, हवा पर आधिपत्य स्थापित कर लेने को आतुर है। अपौरुषेय कहे जाने वाले आरण्यक संस्कृति के वेद-उपनिषदों को राष्ट्रीय घोषित करना अपने भगवान को पंजीकृत करना है। मानवीय सभ्यता के धरोहर ग्रन्थ "श्रीमद्भगवद्गीता" को इंसानी सरहदों तक सीमित करना प्रकृति को बाँध देना है।

केवल 'राष्ट्रग्रंथ' नहीं, नैतिकता का 'विश्वग्रंथ' है 'पवित्र गीता'। "श्रीमद्भगवद्गीता" को केवल राष्ट्रीय ग्रंथ घोषित करने की प्रस्तावना राष्ट्र की सीमा में "श्रीमद्भगवद्गीता" को सीमित कर देने जैसा बौद्धिक व्यायाम के अतिरिक्त क्या है? "श्रीमद्भगवद्गीता" के प्रथम प्रवक्ता सूर्य हैं, "श्रीमद्भगवद्गीता" में ही ऐसा उल्लेख है। सूर्य केवल किसी राष्ट्र की निजी सम्पदा यदि कोई घोषित करे तो क्या ऐसी सामर्थ्य सूर्य के सम्बन्ध में किसी भी राष्ट्र की संभव है? "श्रीमद्भगवद्गीता" की मूल जन्मभूमि कुरुक्षेत्र की मात्र भारत-भूमि नहीं, सूर्य-भूमि है! सूर्य लोकतांत्रिक है! जिस सूर्यभूमि के विभिन्न ग्रहों की तरह पृथ्वी भी एक ग्रह है, जिस पृथ्वी का एक राष्ट्र भारत भी है और सूर्य जो सभी ग्रहों का मुखिया है। सूर्य की संख्या ब्रह्माण्ड में अगणित है। अर्थ हुआ गीता सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के अगणित सूर्यों की सूर्य भूमि से ब्रह्माण्डव्यापी पर्जन्य वर्षा है, जिसकी बूँदें भारत और इसके कुरुक्षेत्र पर भी पड़ी है, पड़ रही है, पड़ती जाती रहेंगी। सौर्य मंडल नकारात्मक और सकारात्मक दोनों प्रकार की ऊर्जा विकीरित करता है। नकारात्मकता का प्रतिनिधित्व कौरव और सकारात्मक ऊर्जा का प्रतिनिधित्व पांडव करते हैं। दूसरे शब्दों में अच्छाई और बुराई के बीच युद्ध के लिए उत्सुक प्रतिद्वंदियों के मध्य राग और द्वेष के बीच अजातशत्रुता का क्रांति पथ है गीता, जिसका ध्येय शांति की मशाल जलाना है। यह अशांति और शांति के बीच बुराई और अच्छाई के मध्य-बिंदु पर अपने मनोरथ को दृढ़ता से स्थापित करने की आर्जुनेय आकांक्षा है।

जिन देशों ने इसे मानवता का धरती पर अवतरित अनुवाद माना है अथवा जो देश अभी तक गीता के अनुवाद से वंचित है उन सबमे अच्छाई और बुराई के बीच भलाई की स्थापना की "श्रीमद्भगवद्गीता" सारथी है। भारत सहित दुनिया के सभी प्रमुख दार्शनिकों, विचारकों, चिंतकों, संतों, विद्वानों, साहित्यकारों, वैज्ञानिकों ने अपने-अपने स्तर से इस पवित्र ग्रन्थ को आत्मसात किया था। सर विलियम जोन्स (1746-1794) द्वारा "मनु-स्मृति" के अनुवाद ग्रन्थ में तत्कालीन अँग्रेज गर्वनर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने इस ग्रन्थ की भूमिका में इसे 'मानवता की उन्नति' के लिए आवश्यक 'एक महान मौलिक ग्रन्थ' मानते हुए लिखा कि, 'गीता का उपदेश किसी भी जाति को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने में अद्वितीय है।' (सन्दर्भ_बी.एन.पुरी 'एन्सेट' इंडियन हिस्ट्रोग्रेफी - ए. बाई सेन्चुरी स्टडी,' दिल्ली 1994 पृ. 41)। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के चार्ल्स विकिंस Charles Wilkins (1749-1836) जिसने बनारस में संस्कृत भाषा सीखी, ने 1785 में भगवद्गीता का अँग्रेजी में अनुवाद प्रकाशित किया। शायद यही पहली बार था जब संस्कृत ग्रन्थ का सीधे किसी यूरोपीय भाषा में अनुवाद हुआ। डुपरो, फ्रेंच विद्वान (1778 में) ने इसका फ्रेंच अनुवाद कर इसे 'भोगवाद से पीड़ित पश्चिम की आत्मा को अत्यधिक शांति देने वाला' कहा।

ऑगस्त श्लेगल (1767-1845) - जर्मन दार्शनिक और विल्हेम हम्बोल्ड ने मिलकर भगवद् गीता का जर्मन में भाष्य प्रकाशित किया। विल डयून्ट-अमरीकन दार्शनिक (1885–1981) मैजिनी-इटली, हेनरी डेविड थोरो (1813-1862), इमर्सन से लेकर वैज्ञानिक राबर्ट ओपन हीमर तक सभी गीता ज्ञान से स्तम्भित हुए। पादरी इमर्सन ने गीता अनुवाद कर इसे 'यूनिवर्सल बाइबिल' कहा था। 16 जुलाई, 1945 को अमरीका के न्यूमैक्सिको रेगिस्तान में जब अणु बम का प्रथम परीक्षण किया गया तो वैज्ञानिक राबर्ट ओपनहाबर ने विस्फोट से अनन्त सूर्य में अनेक ज्वालाओं को देखकर कहा कि उसे गीता के विराट स्वरूप का दर्शन हुआ तथा वह त्यागपत्र देकर गीता भक्त बन गया था। टी.एस. इलियट ने गीता को 'मानव वांग्मय की अमूल्य निधि' कहा। दुनिया की 28 सभ्यताओं के विशेषज्ञ, विद्वान, विश्वविख्यात, इतिहासकार, सर आरनोल्ड टायनवी ने यहाँ तक कहा कि विध्वंस की ओर जाते पाश्चात्य जगत को भारतीय तत्वज्ञान की ओर जाना पड़ेगा, जो सभी के अन्दर ईश्वर को मानता है (सन्दर्भ 'ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री')। अमरीकी विद्वान इमर्शन और इंग्लैण्ड के संत कार्लालय ने कभी परस्पर एक दूसरे को गीता भेंट किया था। शोपनहावर, जर्मनी विद्वान ने माना कि 'भारत मानव जाति की पितृभूमि है।' कांट-जर्मनी विद्वान के जीवन को गीता ने दर्शन का पंडित बना दिया। मैक्समूलर तो भक्ति भाव से अभिभूत थे। रोमां रोलां, फ्रेंच विद्वान, नोबुल पुरस्कार विजेता के अनुसार गीता ने यूरोप की अनेक आस्थाओं को धूल-धूसरित कर दिया तथा मानव को नवदृष्टि दी।

भगवान श्री राम की मर्यादा राष्ट्रीय आचरण नहीं, इंसानियत का समाजीकरण है। भगवान बुद्ध का पञ्चशील राष्ट्रीय जीवन-दर्शन नहीं, इंसानियत का इनसाइक्लोपीडिया है। भगवान महावीर का पाँच-महाव्रत राष्ट्रीय संकल्प नहीं, इंसानियत का संकल्प है। चाणक्य का अर्थशास्त्र राष्ट्रीय वित्त-नीति नहीं, इंसानियत का राज्य-सिद्धांत है। गाँधी की अहिंसा राष्ट्रीय संपत्ति नहीं, विश्व के सभी दबे-कुचलों-वंचितों का मौलिक अधिकार है। मै और हम के कर्तव्य अभिमान से उपजी अधिकारों के सदुपयोग-दुरूपयोग की सरहदी नोंक पर भगवान 'जनार्दन' ने अपने भक्त 'जनता' से जो कही; वही अमरवाणी श्रीमद्भगवद्गीता में लिपिबद्ध हुई। आत्मप्रवंचना और आत्मश्लाघा का रोग दुनिया-भर के देशों के साथ भारत में भी बुरी तरह से फैल गया है, जिससे बचने-उबरने का उपाय भी राष्ट्रीय धरोहर गीता में निहित है। स्वाधीनता आंदोलन महात्मा गाँधी के नेतृत्व में लड़ा गया, जिसमें चप्पे-चप्पे पर 'पवित्र गीता' जूझ रही थी। महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द, डॉ. राधाकृष्ण, विनोवा भावे, जैसे सभी राष्ट्रीय महान आत्माओं के लिए गीता सदैव भारतीय जीवन दर्शन, भारतीय जीवन पद्धति की पथ प्रदर्शिका रही है। गीता से ही मार्ग लिया करते थे राष्ट्र के लिए समर्पित राष्ट्र पुरुष लोग।

भारतीय ऋषियों ने गहन विचार-मंथन के पश्चात जिस ज्ञान-परंपरा को आत्मसात किया, उसे उन्होंने वेदों का पवित्र नाम दिया। इन्हीं पवित्र वेदों का अंतिम भाग उपनिषद कहा गया। उपनिषदों में समाहित ज्ञान मानव की बौद्धिकता की उच्चतम अवस्था है। मानवीय मूल्यों से प्राप्त बौद्धिक शक्ति बुद्धि की सीमाओं के परे मनुष्य क्या अनुभव कर सकता है उसकी एक झलक भी दिखा देता है। उसी औपनिषदीय ज्ञान को महर्षि वेदव्यास ने सामान्य जनों के लिए "पवित्र गीता" में संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है। वेदव्यास की महानता ही है, जो कि 11 उपनिषदों के ज्ञान को एक पुस्तक में बाँध सके और मानवता को एक आसान युक्ति से परमात्म ज्ञान का दर्शन करा सके। "पवित्र गीता" महाभारत के भीष्मपर्व के अन्तर्गत दिया गया एक उपनिषद है । श्रीमद्भगवद्गीता की पृष्ठभूमि महाभारत का युद्ध है। भगवद्गीता हिन्दू धर्म के पवित्रतम ग्रन्थों में से एक है जो इंसानो की चौहद्दी की सीमा रेखा पर भगवान के श्री मुख द्वारा इंसान से कही गयी। सरहदों पर चेहरों की स्क्रूटनी का लेखा-जोखा है यह

पवित्र ग्रन्थ। श्रीमद्भगवद्गीता में देह से अतीत आत्मा का सलीके से निरूपण कर एकेश्वरवाद, कर्म योग, ज्ञानयोग, भक्ति योग की सारगर्भित चर्चा हुई है। जब इंसान अपने जीवन की समस्याओं में इतिहास के महानायक अर्जुन की तरह उलझकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो, जीवन की रणभूमि से पलायन करने का मन बना लेता है। निराशा, अनिश्चतता, हताशा, समस्याओं की सरहद पर कर्तव्य विमुख न हो सके इसी के लिए 5,151 वर्ष पूर्व कही गयी "श्रीमद्भगवद्गीता" के 700 श्लोकों को पढ़कर उन्हें अपने जीवन में आत्मसात करने का आह्वान सभी राष्ट्र के महापुरुषों ने अपने-अपने समय पर कहा है।

आकांक्षा

शकुन्तला बहादुर

बँध गई थी बंधनों में मैं बहुत,
अब न बंधन कोई मुझको चाहिये।
उड़ सकूँ उन्मुक्त मैं आकाश में,
बस यही अधिकार मुझको चाहिये।।

व्यस्त जीवन में सदा रहते हुए,
चाह कर भी मैं न जो कुछ कर सकी।
आज वह वेला सुखद है आ गई,
मानसिक सन्तोष मुझको चाहिये।।

व्यर्थ ही जीवन गँवा मैंने दिया,
यह निराशा अब न मुझको चाहिये।
स्वेच्छा से कर सकूँ जनहित यहाँ,
शान्ति मन की ही मुझे अब चाहिये।।

लालसा यश की नहीं, धन की नहीं,
आत्मगौरव ही मुझे अब चाहिये।
प्रिय किसी का यदि कभी मैं कर सकूँ,
हर्ष का वह क्षण मुझे अब चाहिये।

हिन्दी के भगीरथ - महामना पं मदन मोहन मालवीय

डॉ. नीलम शर्मा

इतिहास जब हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित कराने का श्रेय किसी को देगा तो पहला नाम महामना पं. मदन मोहन मालवीय का होगा। १९वीं शताब्दी तक उत्तर प्रदेश की राजभाषा के रूप में हिन्दी का कोई स्थान नहीं था। परन्तु २० वीं सदी के मध्यकाल तक वह भारत की राष्ट्रभाषा बन गई, उसके पीछे महामना मालवीयजी के ही प्रयास थे जो उस आन्दोलन के आधार बने।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की सदस्यता मालवीय जी ने सभा की स्थापना के प्रथम वर्ष से ही ले ली थी। उसी समय से उन्होंने प्रयाग में वकालत आरम्भ की परन्तु सभा के कार्य कलापों से उन्होंने कभी भी अपने को अलग नहीं रखा। वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने हिन्दी भाषा के प्रचार- प्रसार तथा उसे समुचित स्थान दिलाने के लिए किये जाने वाले संघर्ष को जन आन्दोलन का रूप दिया तथा सभा की सम्पदा तथा आर्थिक स्रोतों के विकास के लिये महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

जब बंगाल, उड़ीसा, गुजरात तथा महाराष्ट्र की मातृभाषाएँ राजकाज तथा अदालतों की भाषा बन चुकी थीं उस समय भी उत्तर प्रदेश की भाषा हिन्दुस्तानी थी और उर्दू को ही हिन्दुस्तानी माना जाता था जो फारसी लिपि में लिखी जाती थी। हालाँकि, सन् १८८५ के विधान में यह व्यवस्था थी कि सम्मन आदि अदालती कार्यों में हिन्दी और उर्दू दोनों का प्रयोग हो परन्तु व्यावहारिक रूप में उर्दू का प्रयोग जारी रहा। गवर्नर ने अपने काशी आगमन पर नागरी प्रचारिणी सभा के प्रतिनिधि मण्डल को मिलने का भी समय नहीं दिया और दूसरी ओर रोमन को राष्ट्र की लिपि बनाने का आन्दोलन चला।

इससे पूर्व मालवीय जी बालकृष्ण भट्ट के साथ हिन्दी का कार्य आरम्भ कर चुके थे। भट्ट जी हिन्दी के लिए समर्पित थे और उनके मन में हिन्दी को एक प्रतिष्ठित रूप में देखने की व्यग्रता थी। उस समय प्रयाग में केवल एक ही पुस्तकालय थार्नहिल मैमोरियल लाइब्रेरी के नाम से था जिसमें यूरोपियन भाषाओं की पुस्तकों का बाहुल्य था तथा जनरुचि की पुस्तकों का अभाव था। मालवीय जी के प्रयास से उनके निवास स्थान के पास ही भारती भवन पुस्तकालय की स्थापना हुई। पुस्तकालय के नियम के अनुसार यहाँ केवल हिन्दी तथा संस्कृत की ही पुस्तकें खरीदी जा सकती थीं तथा यूरोपियन भाषाओं की पुस्तकें केवल दान में प्राप्त की जा सकती थीं। मालवीय जी भारती भवन के ट्रस्टी चुने गये तथा वे जीवनपर्यन्त उसके अध्यक्ष रहे।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना सन् १८९३ ई. में हुई थी। इससे लगभग १ दशक पहले सन् १८८४ में प्रयाग में मालवीय जी के प्रयास से हिन्दी हितकारिणी सभा की स्थापना की गई थी। सर्वश्री माघव प्रसाद शुक्ल, रासबिहारी शुक्ल तथा पुरुषोत्तमदास टण्डन उनके सहयोगी थे। इस

संस्था के माध्यम से भारतेन्दु की मान्यता 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति कै मूल' को बल मिला और भारतेन्दु ने जो हिन्दी का सपना देखा था वह मालवीय जी तथा उनके सहयोगियों के हाथों स्वरूप लेने लगा।

सन् १८९४ में मेरठ के दुर्गादत्त ने न्यायालयों में देवनागरी लिपि के प्रयोग के लिए ज्ञापन दिया जो अस्वीकृत हो गया। इस सन्दर्भ में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने लैफ्टीनेन्ट गवर्नर को काशी आमंत्रित किया जिसका सकारात्मक उत्तर मिला। मालवीय जी के ऐतिहासिक प्रयास यहीं से आरम्भ होते हैं।

मालवीय जी ने लैफ्टीनेन्ट गवर्नर से भेंट की तथा हिन्दी न्यायालयों की भाषा बने इसका पक्ष दृढ़ता से प्रस्तुत किया। वे वकालत का काम छोड़ कर इसी कार्य में जुट गए। उच्च न्यायालय के एक कक्ष में लोग उन्हें कानून की पुस्तकों से नहीं वरन् सन्दर्भ पुस्तकों तथा अन्य साहित्यिक पुस्तकों से घिरा हुआ देखते थे। अनेक स्थानों का दौरा करके उन्होंने आंकड़े एकत्र किये तथा एक सौ पृष्ठों का ऐतिहासिक ज्ञापन शासन को देने के लिए तैयार किया। सन् १८९७ में यह दस्तावेज इंडियन प्रेस से प्रकाशित हुआ। इस कार्य को और गति देने के लिए नागरी प्रचारिणी सभा ने १७ व्यक्तियों की एक समिति का गठन किया। समिति के एक मात्र प्रतिनिधि मालवीय जी थे। प्रतिवेदन में ६० हजार व्यक्तियों के हस्ताक्षर थे जिनका मत था कि देवनागरी लिपि को ही न्यायालयों की भाषा होने का अधिकार है। यह हिन्दी के लिए पहली सुनियोजित एवं व्यूह बद्ध लड़ाई थी जिसने जनमानस में हिन्दी के प्रति अपराजेय लालसा को जन्म दिया। मालवीय जी के परामर्श से बाबू श्यामसुन्दर दास ने कार्यक्रम को आन्दोलन के रूप में चलाने के लिए नगरों में समितियाँ गठित कीं। जनता के साथ बुद्धिजीवी तथा पत्र पत्रिकाएँ भी इस अभियान से जुड़ गईं।

२० अगस्त सन् १८९६ में राजस्व परिषद ने एक प्रस्ताव पास किया कि सम्मन आदि की भाषा एवं लिपि हिन्दी होगी परन्तु यह व्यवस्था कार्य रूप में परिणित नहीं हो सकी। १५ अगस्त सन् १९०० को शासन ने निर्णय लिया कि उर्दू के अतिरिक्त नागरी लिपि को भी अतिरिक्त भाषा के रूप में व्यवहृत किया जाये। यह मालवीय जी के नेतृत्व में चल रहे प्रयासों की विजय थी परन्तु उर्दू भाषी तथा यूरोपियन समुदाय पर इसकी प्रतिकूल प्रतिक्रिया हुई। लैफ्टीनेन्ट गवर्नर ने मालवीय जी को बात करने के लिए आमंत्रित किया। मालवीयजी उस समय तेज बुखार में थे परन्तु दवाओं का ढेर लेकर वे गवर्नर के पास पहुँचे उसी स्थिति में उन्होंने गवर्नर से दो घण्टे बात की और उन्हें आश्वस्त किया कि वे आन्दोलन की चिन्ता न करें तथा किसी स्थिति में आदेश वापस न लें। यह कार्य मालवीय जी ही कर सकते थे।

हिन्दी प्रदेश की भाषा बन गई थी परन्तु मालवीयजी उसे राष्ट्र की भाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए चिन्तित थे। उन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रारूप प्रस्तुत किया तथा सन् १९१० में

काशी में आयोजित प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता की। सम्मेलन में देश भर से ३०० प्रतिनिधि तथा विभिन्न प्रमुख समाचार पत्रों के ४२ सम्पादक सम्मिलित हुए। इस अवसर पर अदालतों में नागरी लिपि का प्रचार, उच्च कक्षाओं में हिन्दी का शिक्षण, हिन्दी पाठ्यपुस्तकों का प्रणयन, राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी और नागरी का प्रयोग तथा स्टाम्पों पर हिन्दी का प्रयोग आदि प्रस्ताव पारित किए गये।

सम्मेलन में मालवीय जी ने अत्यन्त मार्मिक अध्यक्षीय भाषण दिया। एक कोष की स्थापना की गयी जिसमें तुरन्त ३५२४ रुपये संग्रहीत हो गये। स्वयं मालवीय जी ने अपने अंशदान के रूप में ११ हजार रुपये देने की घोषणा की। सभा पर ६ हजार रुपये का ऋण था उसे अदा करने का आश्वासन मिला। पं. श्यामबिहारी मिश्र ने मालवीयजी के संबन्ध में कहा था "हिन्दी की जो उन्नति आज दिखाई देती है उसमें मालवीय जी का अद्वितीय योगदान है। इस अवसर पर हमें दूसरा सभापति इनसे बढ़कर नहीं मिल सकता था।"

अपने अध्यक्षीय भाषण में मालवीयजी ने हिन्दी अपनाने, सरल हिन्दी का प्रयोग करने तथा अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्द ग्रहण करने की अपील की। उनका कहना था कि संस्कृत की पुत्री होने के कारण हिन्दी प्राचीनतम भाषा है।

सन् १९१९ से बम्बई में आयोजित हिन्दी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए मालवीय जी ने कहा कि सभी भारतीय भाषाएँ आपस में बहने हैं तथा हिन्दी उनमें बड़ी बहन है। अन्य प्रादेशिक भाषाओं की अपेक्षा हिन्दी बोलने वालों की संख्या अधिक है। ३२ करोड़ भारत वासियों में ही साढ़े तेरह करोड़ लोग हिन्दी बोलते हैं। अतः देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी भाषा को राष्ट्र भाषा का स्थान दिया जाना चाहिए। उन्होंने हिन्दी को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाने पर भी बल दिया। उन्होंने आशा व्यक्त की कि कोई दिन आएगा जब अंग्रेजी की तरह हिन्दी भी विश्व भाषा बनेगी। सन् १९३९ में काशी में पुनः आयोजित १८ वें हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वे स्वागताध्यक्ष थे। इसी हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने बाद में मालवीय जी के आदर्शों के उत्तराधिकारी पुरुषोत्तमदास टण्डन के नेतृत्व में भारतीय संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में अभिहित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर पर हिन्दी को एक विषय के रूप में उन्होंने स्थान दिया। कलकत्ता विश्वविद्यालय के बाद काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ही था जहाँ सबसे पहले हिन्दी में स्नातकोत्तर कक्षाओं में शिक्षा प्रारम्भ हुई। हिन्दी साहित्य में प्रथम शोध भी यहीं प्रस्तुत हुआ था। विश्वविद्यालय की स्थापना के मूल में मालवीय जी के मन में एक ऐसा विश्वविद्यालय स्थापित करने की परिकल्पना थी जहाँ मातृभाषा में सभी विद्याओं के शिक्षण की व्यवस्था हो। विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में उन्होंने बाबू श्यामसुन्दर दास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध तथा लाला भगवानदीन जैसे विद्वानों की नियुक्ति की। उनकी इच्छा थी कि विश्वविद्यालय में

हिन्दी माध्यम से शिक्षा दी जाये परन्तु शिक्षा सचिव बटलर के विरोध के कारण तब ऐसा संभव नहीं हो सका। फिर भी विश्वविद्यालय की रजत जयन्ती के अवसर पर महात्मा गांधी की उपस्थिति में मालवीय जी ने विश्वास दिलाया था कि जैसे-जैसे हिन्दी में पुस्तकों की रचना होती जायेगी हिन्दी माध्यम को विस्तार दिया जाता रहेगा। दुर्भाग्य से अंग्रेजों के भारत छोड़ने से पहले वे इस लोक से चले गए अन्यथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय हिन्दी माध्यम का विश्वविद्यालय होता। यह दायित्व वह दूसरी पीढ़ी पर छोड़ गये हैं। काश! मालवीयजी की इस महान् संस्था के वेतनभोगी उनकी भावना को महसूस कर सकते।

नागरी प्रचारिणी सभा से वे अन्त तक जुड़ कर हिन्दी के लिए कार्य करते रहे। हिन्दी शब्द सागर की पूर्ति पर उन्होंने सभा के नये भवन का शिलान्यास किया था। प्रस्तर मंजूषा में ताम्र पर मालवीयजी के संबन्ध मे लिखा गया - "इस स्थल पर नागरी प्रचारिणी सभा काशी के नवीन भवन का शिलान्यास संस्कार माघ शुक्ल ५ सं. १९८५ विक्रमी को महामना पं मदन मोहन मालवीय के कर कमलों से संपन्न हुआ।"

हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में भी मालवीय जी का अवदान अविस्मरणीय रहेगा। उन्होंने कालाकांकर जैसे ग्रामीण अंचल में रहकर हिन्दी के प्रथम दैनिक हिन्दोस्थान का सम्पादन किया तथा अपने सम्पादन से देश में एक नयी वैचारिक क्रान्ति को जन्म दिया। उन्होंने 'अभ्युदय' जैसे कई पत्रों का भी सम्पादन किया जिसमें पहली बार राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त की रचना प्रकाशित हुयी थी। यदि मालवीय जी न होते तो मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवि प्रेरणा विहीन रहते और उनकी साधना भी शायद इतनी प्रखर न होती।

मालवीय जी स्वयं भी रचनाकार थे। बाल्यकाल से ही वे 'मकरन्द' नाम से लिखते थे तथा उनकी रचनाओं का प्रकाशन बाल कृष्ण भट्ट के 'हिन्दी प्रदीप' में होता था। बी.ए. पास करने के बाद ही उन्होंने इलाहाबाद में साहित्य समाज की स्थापना की थी जहाँ साहित्य चर्चा तथा हिन्दी प्रचार का कार्य होता था।

इस प्रकार महामना मालवीय ने बाल्यकाल से जीवन के अन्तिम क्षण तक हिन्दी के लिये अथक कार्य किया। उनके अनवरत प्रयास और संघर्ष केवल भगीरथ की तपस्या के पर्याय हो सकते हैं जिसके फलस्वरूप हम एक गंगा के दर्शन कर सके जिसका नाम राष्ट्र भाषा हिन्दी है।

सदर्भ:-

मदन मोहन मालवीय - संजय गोयल, प्रकाशक ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली
महामना प. मदन मोहन मालवीय और हिन्दू धर्म- सुभाष चन्द्र
गगनांचल - भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली, जुलाई-सितम्बर 2007.
पंडित महामना का हिन्दी में योगदान-स्वर्णलता सिंह
शिक्षा कलश - अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका वर्ष 3 अंक 1 जून 2010
पं. मदनमोहन मालवीय के शैक्षिक विचारों का अध्ययन - मार्कण्डेय राय
प्रतियोगिता दर्पण-जुलाई 2006.

क्षमा

स्नेह ठाकुर

सबसे पहले मेरी पूर्व-पत्नी मौत के घाट उतारी गई, फिर मेरे सहमे हुए बच्चे। मेरी बड़ी बेटी राका अपने छोटे भाई, मेरे छोटे लड़के को अपने आगोश में दबोच मौत से छुपाने का प्रयत्न करती हुई ...पर क्या वह उसे मौत के क्रूर हाथों से बचा पाई? नहीं, गोली उसकी छाती में जाने से पहले दनदनाती हुई भाई को ही पहले लगी।

क्षमा....किसे क्षमा करूँ इस हादसे के लिए?....उसे जिसन पिस्तौल की नली से गोली दागी? अपनी उस पूर्व-पत्नी को जो इतनी धर्म-कट्टर थी जिसने उस धर्म की आड़ में, व मातृत्व की संरक्षता का सहारा ले बहुत पहले ही मुझे मेरे बच्चों से दूर कर दिया था?....फिर भी सन्तोष था कि वो हैं तो....या फिर उस धर्म-सम्प्रदाय को जो ऐसे हादसे करने के लिए मानव को मज़बूर कर देता है?....या फिर अपने को जो अभी तक अपने को दोषमुक्त नहीं कर पाया, जो स्वयं तो उस संकीर्ण धर्म-सम्प्रदाय की परिधि से निकल आया पर अपने बच्चों को उससे न निकाल पाया? पत्नी तो बालिग थी, सोच-विचार कर सकती थी, अपने भले-बुरे के निर्णय का अधिकार उसे था पर बच्चे तो नाबालिग थे, नासमझ थे....गिल्ट, गिल्ट ही गिल्ट।

डेविड, ज़ूली का नया पति जब घंटा भर पहले क्रोध से कुलबुलाता अपार्टमेन्ट में घुसा था तो ज़ूली ने उसे शांत करने की कोशिश की थी, पर क्या सचमुच कोशिश की थी?

डेविड जानना चाहता था कि उसने ज़ूली के धर्म-सम्प्रदाय का मताबलम्बी बन उसके निर्वाह में कोई कसर नहीं उठा रखी थी। उसके मापदंड पर खरा उतरने की उसने कम से कम कोशिश तो की ही है तो फिर वह अब उसे क्यों छोड़ना चाहती है?

ज़ूली के पास इसके अलावा कोई उत्तर नहीं था कि मैने दो शादियाँ करके देख लीं हैं। मैं दोनो बार फेल हुई हूँ, सन्तुष्ट नहीं हूँ, अतः अब मैं इसे हमेशा के लिए छोड़ना चाहती हूँ। इस बंधन में नहीं रहना चाहती हूँ।

डेविड ने फिर भी रिश्ता कायम रखने का प्रयत्न किया पर अंत में कुछ भी निष्कर्ष न निकला और न जाने किस राक्षसीय वृत्ति के आधीन हो उसने पिस्तौल से गोलियाँ दाग दीं। सबको खत्म कर खुद को खत्म करने का इरादा था। इस बाबत उसने नोट भी छोड़ा था पर स्वयं को मारना इतना सहज न हो सका। खुद की जान लेना इतना आसान नहीं जितना मनुष्य सोचता है।

डेविड दरवाज़े से निकल ही रहा था कि पुलिस ने उसे घेर लिया जिन्हें पड़ोस वालों ने फोन करके बला लिया था।

डेविड घुटनों पर गिर कराह उठा, 'मुझे जीने का कोई हक़ नहीं है' पर साथ ही साथ जीने की प्रवृत्ति भी सिर उठा रही थी। पुलिस के साथ हुए इन्टरव्यू में उसने कट्टरपंथी धर्म-सम्प्रदाय को, लो ब्लड-शुगर को और सबसे ज़्यादा ज़ूली को अपनी यातना और डिप्रैशन के लिए दोषी ठहराया।

शिशिर की ठंडक कम हो रही थी। वसन्त के आगमन के लिए सूर्य तापमान बढ़ा रहा था। यह एक ऐसा समय था जब तापमान जीरो डिग्री के आसपास मँडरा रहा था। मौसम विभाग की 'फ्रीज़िंग रेन', बर्फ-में-जमती-हुई बरसात की भविष्यवाणी सही साबित हो रही थी। आकाश से पानी की बूँदें टपक-टपक धरती के शरीर पर गिरते ही बर्फ की पतली-सी चादर में परिवर्तित हो रही थीं। ठूँठ-से खड़े पेड़ों पर, पेड़ों की नंगी टहनियों पर, घरों की मुंडेरों पर, उनके छज्जों पर, हर कहीं बर्फ की सलाखों की झालर मूलियों-सी लटक रहीं थीं। अंशुमाली जहाँ-तहाँ उन पर अपनी किरणें फक हीरे की चमक का भ्रम पैदा कर रहे थे। एक तरफ दृश्य जितना सुहावना था, दूसरी तरफ उतना ही ख़तरनाक। सड़कें बर्फ की चादर बनी हुईं थीं। गाडी चलाना तो दूर, उनपर चलना भी आसान बात न थी। फिसलन, चारों ओर फिसलन ही फिसलन।

ऐसे में पुलिस को अपने दरवाज़े पर पा मैं आश्चर्यचकित रह गया। मस्तिष्क उलट-पुलट हो कलाबाजियाँ खा अनुमान लगाने लगा, पर मैनें तो ऐसा कुछ भी नहीं किया था जिसकी आशंका से मैं भय-त्रस्त होता। हालाँकि मैं इस तथ्य से आश्वस्त था तथापि आश्चर्य ने फिर भी मेरे मुँह को कुछ

क्षणों तक बंद न होने दिया, जबड़े खुले के खुले रह गए। जब पुलिस ने मुझे अपने आने का कारण बताया तो मैं खड़ा न रह सका। इस बात की तो मैं कल्पना ही नहीं कर सकता था, सात जनम में भी इस तरह की बात सोच भी नहीं सकता था। इस तरह की आशंका तो मेरे ज़ेहन में उतर ही नहीं सकती थी। पुलिस मेरे दरवाज़े पर यह पूछने आई थी कि क्या मैं ही उन दो अभागे बच्चों का पिता हूँ। मुझे बताया गया कि मेरी पूर्व-पत्नी व दोनो बच्चे मौत का शिकार हो चुके हैं और उनके हत्यारे को पकड़ लिया गया है।

डेविड को २५ साल की सजा हुई। शायद किसी की नज़रों में यह न्याय होगा पर मैं इससे समझौता नहीं कर पा रहा था। लगा तीन जानें लेने का हरजाना २५ साल क्या २५ जनम भी नहीं हैं. . .और फिर मासूम बच्चों की जान लेना जिनका कोई दोष ही नहीं है। अगर ईश्वर है तो कहाँ है? उसने ऐसा हादसा होने ही कैसे दिया?

मैं बहुत सारे सवालों से घिरा रहा। लोगों ने कहा उसे क्षमा कर दो तभी तुम्हे शांति मिलेगी पर मैं ऐसा न कर सका। मेरे दिमाग में घंटी की तरह ना-ना शब्द टनटनाता रहा।

मैं करीबन सोलह साल का था जब जूली के मोहपाश में फँस उसके धर्म-सम्प्रदाय का मतावलम्बी बनने को ना केवल तैयार हो गया था वरन उत्सुक, उत्साहित हो तत्पर हो उठा था। अब सोचता हूँ कि उन्होंने मेरे भोलेपन का, मेरी कोमल प्रवृत्ति का कितना नाजायज़ फायदा उठाया। पर उन्हें ही क्या दोष दूँ, मैं खुद ही अंधा हो गया था। घर-घर जाकर मैं उनके धर्म का प्रचार करने लगा। मेरी सौम्य प्रवृत्ति प्रचार में बड़ी सहायक सिद्ध हुई। जितना ही मैं सफल होता गया उतना ही मेरा मस्तिष्क अहं क दबाव से कुंद होता गया। मैं किसी भी और दिशा में सोच-विचार की क्षमता ही खोता चला गया।

शादी के कुछ साल बाद मोहाच्छन बादलों की तरह फटता चला गया। पुरानी रजाई की धुनी रूई में जगह-जगह छिद्र दिखने लगे और उन छिद्रों से उस धर्म-सम्प्रदाय की कट्टरता के चिन्ह पहले छोटे-छोटे और फिर बड़े-बड़े आकार में दृष्टिगोचर होने लगे। आँखों के ऊपर बँधी पट्टी उतरी। कैटेरैक्ट की दशा जैसा जो धुँधला-धुँधला दिख रहा था अब वो ही सारे दोष साफ नज़र आने लगे।

समझ ही नहीं आया कि इतने सालों तक मैनें गांधारी की तरह स्वयं ही अपनी आँखों पर पट्टी क्यों बाँध रखो थी। पर शायद पट्टी बँधी रहती तो वैवाहिक जीवन सुखी रहता। इसी आशा से तो गांधारी ने भी पट्टी बाँधी थी। पर क्या यह उचित था? धृतराष्ट्र के अंधेपन को अपनी आँखों का सहारा देने की जगह उसकी तरह खुद भी अंधे बन जाना क्या उचित था?

मैं भी आज तक अपने को इसी उधेड़-बुन से नहीं निकाल पाया। शायद मैं पट्टी बाँधे रहता तो जूली न मरती, बच्चे न मरते। मेरी पट्टी खुलते ही हमारे सम्बन्धों में दरार आने लगी। जूली इतनी कट्टरपंथी धर्मावलम्बी थी कि हम समझौता न कर सके। 'कल्ट' धर्म-सम्प्रदाय की उस पर कड़ी पकड़ थी। आखिर में मैं साथ न रह सका, मेरा दम घुटने लगा। उसकी जिन्दगी से, उसके धर्म-सम्प्रदाय से मुझे निकलना पड़ा। सोचा था जब कटुता कम हो जाएगी और बच्चे कुछ समझने लायक हो जाएँगे तो उन्हें भी इस 'कल्ट' की दलदल से निकाल लाऊँगा। यद्दपि कि अभी तक कल्ट वालों ने मुझे मेरे बच्चों से मिलने भी नहीं दिया था पर अन्तरमन की आशा की ज्योति कभी मद्धिम नहीं हुई थी जो आज अचानक बिना तेल के दीए की तरह भर-भराकर बुझ गई है।

जब कल्ट ने मुझे अपनी सदस्यता से निकाला था तो कहा था, कहा क्या था बल्कि डराया-धमकाया था कि अब मेरा 'सालवेशन' नहीं हो सकता, मेरी मुक्ति नही, मैं आजन्म नरक की पीड़ा भोगता रहूँगा। कहा तो उन्होंने किसी और सन्दर्भ में था और मुझे मालूम है कि उनके इस कथन में रंचमात्र भी सत्यता नहीं पर क्यों आज ऐसा लग रहा है कि वो ठीक ही निकले। अगर कोई नरक है तो मैं सचमुच ही नरक-यातना भोग रहा हूँ। पिस्तौल का ट्रिगर तो डेविड ने दबाया था पर क्या उसका ज़िम्मेदार मैं नहीं? जूली के लिए तो फिर भी अपना मन कड़ा कर लूँ, अपने कर्म-फलों की ज़िम्मेदार तो वह स्वयं ही है। हालाँकि एक बार मधुर सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर यद्दपि कि दरारें उन्हें हर कहीं से छिन्न-भिन्न कर देती हैं पर फिर भी उन्हीं छिन्न-भिन्न दरारों के बीच कहीं न कहीं बीती मधुर स्मृतियाँ शिलाखंडों के बीच, घर के पिछवाड़े पैटियो के पत्थरों के बीच, अनचाही घास की कोपलों की तरह सिर उठा ही लेती हैं। पर बच्चे, उनकी मौत को कैसे सह लूँ? मस्तिष्क की सोच चाहे दोषमुक्त कर भी दे पर हृदय की सोच बार-बार मस्तिष्क पर हावी हो जाती है। ऊहापोह मिटने

का नाम नहीं लेती। विचारों और भावनाओं की रुई धुनती ही जा रही है, धुनती ही जा रही है, टंकार पे टंकार हो रही है।

जब हम अलग हुए थे तो जूली ने बार-बार यही दोहराया कि, 'देखो तुम तो हमारी ज़िन्दगी से निकल ही चुके हो पर हमें तो इसी वातावरण में जीना है। तुम बार-बार यहाँ आकर बच्चों की ज़िन्दगी में उथल-पुथल मचाओगे तो उनका जीना मुश्किल हो जाएगा। हम यहाँ के लोगों से भी कटते चले जाएँगे। हम ना इधर के रहेंगे ना उधर के। हमारे विचारों में जमीन-आसमान का अंतर होता जा रहा है। ना हम तुम्हारे साथ जा सकते हैं और ना ही तुम्हारी दख़लंदाज़ी के कारण ठीक से बच्चे यहाँ समा सकते हैं। अतः सबका भला इसी में है कि तुम हमसे मिलना छोड़ दो और सिर्फ़ अपना जीवन अपनी तरह से जिओ।'

और मुझे भी मन मसोस कर लाचारी की अवस्था में इस बात पर रज़ामंद होना पड़ा। दिल पर पत्थर रखकर उस उचित समय का इन्तज़ार करने लगा जो अतीत के गर्त में समा गया है, जो कभी अब भविष्य का मुँह नहीं देखेगा। कहते हैं कि समय तो चलायमान है, कभी नहीं मरता पर मेरे लिए तो वह समय बच्चों की कब्र में बच्चों के साथ ही दफ़ना दिया गया है।

अपने प्रति 'कल्ट' का व्यवहार तो पहले ही देख चुका था। जब तक आप उनकी मानिए तब तक तो मिश्री की मिठास मिलती है पर ज़रा से भी विरोध पर वो मिठास न जाने कहाँ यकायक लुप्त हो जाती है। एकाएक मिश्री की डली निकालकर जिह्वा पर कुनैन की गोली रख दी जाती है। मिठास की 'लिंगरिंग फीलिंग' का भी एहसास नहीं होने दिया जाता। अचानक इतना बड़ा परिवर्तन ! आपके मस्तिष्क की शिराओं को न जाने भावनाओं के किस रसायन से भर दिया जाता है कि आप सिर्फ उन्हीं की तरह सब कुछ देखने लगते हैं बाकी हरएक बात, दृश्य के लिए नेत्र-द्वार बंद हो जाते हैं। यदि कभी खुदा-न-ख़ास्ता आपका त्रिनेत्र खुल गया और आपके त्रिनेत्र को बंद करने के उनके प्रयास असफल हुए तो आपको दूध में पड़ी मक्खी की तरह निकाल बाहर फेंक दिया जाता है। पर निकाल फेंके जाने की प्रक्रिया भी अमानवीयता की सीमा को लाँघ जाती है, या शायद अमानवीयता की सीमा ही नहीं होती। किसी भी 'कल्ट', धर्म-सम्प्रदाय में जाना तो आसान है पर उससे निकलना कितना कठिन है यह भुक्त-भोगी ही जान सकता है।

जब अन्त्येष्टि क्रिया में गया तो पुराने सम्बन्धियों, मित्रों से स्वागत-सत्कार की आशा तो नहीं ही थी पर हाँ कम से कम शिष्टाचारवश, मानवीय सम्बन्धों हेतु सहानुभूति की अपेक्षा तो थी ही पर ये धर्मान्धि कट्टर कल्ट पंथी उसका भी एक कण तक न दे सके। धर्म के ये रक्षक जिनमें प्रेम की गंगा बहनी चाहिए कैसे नफ़रत के पुतले बन जाते हैं, रक्षक की जगह राक्षस बन जाते हैं सोचकर भी अजीब लगता है, मन कसमसाने लगता है। उनकी तरफ से अभिवादन न आता तो शायद फिर भी समझ लूँ पर प्यार न सही शिष्टता के आधार पर ही सही मेरे अभिवादन का उत्तर न देना . . . दिल कचोट जाता है। न चाहते हुए भी कसैलापन हृदय के आसपास आग पर चढ़ी दाल की पतीली में उफान आने पर गंदी झाग-सा सिमटने लगता है। धर्म तो मानव क्या जीव-जन्तुओं से भी प्यार करने की शिक्षा देने वाला होना चाहिए, ये धर्म के ठेकेदार किस आधार पर घृणा के घड़े से लबालब भरे हैं? इतनी घृणा कि मेरा नाम भी जीवित सम्बन्धियों की सूची में नहीं था। मेरा अस्तित्व ही मिटा दिया गया था। पूर्व पति के रूप में तो मान भी लूँ पर पिता के रूप मे जो एक अटल सत्य है, वो कैसे मेरा अस्तित्व नकार सकते थे? मेरी ही जीन्स से मेरे बच्चों का निर्माण हुआ है, किसी के मानने न मानने से यह सत्य तो नहीं झुठलाया जा सकता।

जूली १८ साल की थी जब हमारी शादी हुई। हालाँकि वह बड़ी इन्टेलिजेन्ट, कुशाग्र-बुद्धि-स्वामिनी नवयुवती थी फिर भी इस कल्ट ने उसे इस तरह जकड़ कर पकड़ रखा था, उसकी बुद्धि पर चिक की तरह झीना नहीं वरन एक ऐसा मोटा पर्दा लटका रखा था कि वो माँ-बाप के बार-बार यूनिवर्सिटी शिक्षा के लिए आग्रह करने पर भी पूर्णरूपेण सिर्फ कल्ट की प्रचारिता से ही जुड़ी रही। अगर जादू-टोना कुछ है तो लोग इन कल्ट से सीखें। इनके जैसे 'ब्रेन-वाश' करने वाले कम ही मिलते हैं। मैं जूली को इस संकीर्णता के घेरे से कभी नहीं निकाल पाया बल्कि इसके विपरीत जितनी ज़्यादा मैंने कोशिश की, सम्बन्धों में दरार उतनी ही ज़्यादा बढ़ती गई। 'हेयर लाइन क्रैक' की जगह हम नदी के दो पाट बन गए जो कभी भी न मिल पाएँगे। कहते हैं कि मियाँ-बीबी के सम्बन्धों में बच्चे एक सेतु, पुल का काम करते हैं पर हमारे साथ यह भी सम्भव न हो सका।

हम दोनों ही अपनी-अपनी दिशा में दिग्भ्रान्त भटकते रहे, बिना किसी समाधान के। अंत में जब एक-दूसरे के आदर्शों के साथ जीना न सम्भव हो सका तो तलाक ही एक रास्ता बचा। हम दोनों ही उस ठूँठ की तरह हो चुके थे जो टूट तो सकता है पर लचकदार टहनी की तरह किसी भी दिशा म मोड़ा नहीं जा सकता।

जूली ने, जो एक अच्छे कट्टर कल्ट-पंथी साथी की तलाश में थी, डेविड को चुना। पर यहाँ भी उसका चुनाव गड़बड़ा गया। डेविड प्रेम-पाश में तो बँध गया पर कट्टर कल्ट-पंथी न बन सका। जूली की उन अपेक्षाओं पर खरा न उतर सका। वह उसके व उसके बच्चों के लिए 'कल्ट' का 'रोल-मॉडल' न बन सका। अन्ततोगत्वा उसने इस सम्बन्ध को भी समाप्त करने की सोच ली जो उसकी जान पर भारी पड़ा।

डेविड जो पहले से ही अवसाद के घेरे में था, इस निर्णय को न झेल सका। हत्या व आत्म-हत्या के विषय में सोचने लगा। कल्ट वाले जूली की क्षमताओं को तो अपने फायदे के लिए उपयोग में लाते रहे पर इससे ज़्यादा कुछ न सोच सके। जूली के शारीरिक और मानसिक यातना चिन्हों से परिचित होते हुए भी जूली की जान-रक्षा न कर सके। इन्हें स्वार्थी कहूँ या अंधा?

डेविड हत्या तो कर बैठा वो भी एक नहीं, तीन-तीन, पर कायरता के घेरे में घिरा आत्महत्या न कर सका। न मरना आसान है न मारना पर मरने से मारना फिर भी आसान है।

आज डेविड का पत्र आया था क्षमादान माँगने के लिए। उस डेविड का जिसने आतंक से भेड़-बकरी की तरह मिनमिनाती जूली पर गोली चलाई थी। भय से त्रस्त उस नन्हीं राका पर गोली चलाई थी जिसने भय से अनजान, परिस्थिति से अनजान अपने से भी नन्हे भाई को अपनी छाती में दोनों हाथों से दबोचकर छुपा, बचाने का प्रयत्न किया था और जिस त्रस्तता से उसकी दोनो आँखें तो मिच गईं थीं पर पेशाब निकल गया था। इसके बावजूद भी गोली दनदनाती हुई जिस भाई को उसने बचाने का प्रयत्न किया था, उसी भाई की छाती को छलनी करने के बाद ही उसके स्वयं के हृदय को छद गई थी। क्रूरता की सीमा नहीं।

आज का यह पत्र आने वाले ४ साल के पत्र-व्यवहार की शुरुआत था। पहले तो मैं उसके पत्रों का जवाब न दे सका। देता भी कैसे? उसके पत्र, मेरे बच्चों की क्रूर हत्या, उनकी लाशें जो मेरे ज़ेहन में अंकित हो गईं थीं, मेरी नज़रों के सामने ला देते थे जिसे मैं क्या शायद कोई भी पिता सहन न कर पाता।

पर फिर धीरे-धीरे कुछ बदलने लगा। उसके पत्रों की इन्तज़ार होने लगी, यहाँ तक कि मैं जवाब देने लगा क्योंकि मुझमें अपने बच्चों के बारे में अधिक जानकारी जानने की इच्छा बलबती होने लगी थी और डेविड ही एक ऐसा व्यक्ति था जो मुझे यह दे सकता था।

इसके साथ ही साथ एक और इच्छा का अंकुर पनपने लगा था। क्या क्षमा करके डेविड के साथ-साथ मैं अपने को भी बचा सकता हूँ? स्वार्थ, स्वार्थ का अंकुर पनपने लगा था। मैं अपनी गिल्ट, अपराध भावना के साथ जी नहीं पा रहा था और मैं जीना चाहता था। गिल्ट की अँधेरी गुफा से निकलना चाहता था। मेरा दम घुट रहा था। मैं बाहर की हवा में साँस लेना चाहता था। शायद क्षमा देकर, दाता बनकर मैं अपने को भलमनसाहत, बड़प्पन की उस सीढ़ी पर चढ़ा लेना चाहता था जहाँ उस प्रक्रिया से मुझे कुछ शांति मिल सके।

मैं अपनी विचार-शक्ति खो रहा था। पर कुछ समय बाद मेरी आँखें फिर खुलने लगीं। मैं तो स्वार्थी बन ही रहा था डेविड मुझसे भी बड़ा स्वार्थी निकला। उसके शुरू के खतों के मज़मून और बाद के खतों के मज़मून में काफी अंतर आने लगा। अब उसके पत्रों की क्षमा माँगने की दर्दीली भीख की आवाज़ में कमी होती जा रही थी, और उसकी जगह ले रहा था उसका अपना जीवन का स्वार्थ, जीवन की सुख-सुविधाएँ। उसमें जुड़ता जा रहा था अधिकार का पुट। यह क्षमा उसका जायज़ हक़ बन गया था। अब वह क्षमा-प्रार्थी की जगह क्षमा डिमांड करने लगा था। मेरी कमज़ोरी, मेरा ढीलापन उसकी शक्ति बनता जा रहा था। अब उसे इस बात का ग़म नहीं था कि किस तरह उसने दो मासूम बच्चों की बेरहम हत्या की वरन उसे अब यह ग़म सताए जा रहा था कि जेल में उसे वो सुविधाएँ नहीं मिल रही हैं जो एक मनुष्य को मिलनी चाहिए। वो यह भूलता जा रहा था कि वह मनुष्य था ही कहाँ। उसने तो मानव की जगह दानव का कृत्य किया था। और अब भी वह मानव कहाँ बना?

मनुष्य होता तो पश्चाताप की अग्नि में जलने की जगह सुविधाओं की अपेक्षा करता? अब तो पश्चाताप का अंशमात्र भी उसमें नहीं बचा था।

मैं फिर एक बार सोचने पर मज़बूर हो गया। डेविड अपने भले के लिए मेरा उपयोग कर रहा था। क्षमा की, सहानुभूति की भीख माँगना एक ढोंग था। शुरू में उसमें सत्यता का कुछ अंश रहा हो तो रहा हो पर अब तो निश्चित रूप से ज़रा-सा भी नहीं है। अब तो यह साफ-साफ पूर्णरूपेण पहले से सोचा हुआ प्लान दृष्टिगोचर हो रहा है। शक की गुजांइश ही नहीं। अब तो वह मेरे पत्रों को आधार बना अधिकारो की माँग के लिए 'न्यूज़-मीडिया' का भी जोरों-शोरों से इस्तेमाल करने लगा है। डेविड, मनुष्यता से मेरा विश्वास उठा रहा था।

अब तक मैं डेविड के हाथों में उसके प्रचार-प्रसार का मोहरा बना हुआ था जिसका वह भरपूर फायदा उठाने लगा था। अब तो उसमें थोड़ा अंहकार भी आने लगा था। वो कैदियों के अधिकारों की बात के साथ ही साथ यह भी कहने लगा था कि उस जैसे व्यक्ति को २५ साल तक जेल में रखने का कोई मतलब ही नहीं होता।

उसने अपनी इस दुरावृत्ति को अंधे कुएँ की तह में इस तरह छुपाकर रखा हुआ था कि मुझे इसका आभास तक नहीं होने दिया था। बाह्य जेल म रहना ना रहना बात दूसरी है पर संवेदना से रिक्त होना बात ही अलग है। वह ऊपर से कुछ था अंदर से कुछ और था। वह तो कल्ट और जूली के कल्ट सम्बन्धित व्यवहार से पीड़ित अपनी छवि को बनाए रख मेरी सहानुभूति बटोरता रहा। स्वयं को बच्चों के प्यार-भरे पिता के रूप में दर्शाता रहा। इतना बड़ा धोखा। उसी क्षण से इस नाटकबाज, विश्वासघाती डेविड से मेरा विश्वास उठ गया। क्षमा की प्रवृत्ति जहाँ से उपजी थी वहीं सिर छिपा छुप गई। उस व्यक्ति को कैसे क्षमा करूँ जिसने पश्चाताप का ढोंग भर, मगरमच्छ के आँसू गिरा मुझे धोखा दिया। आज मुझे लगा कि मैं जिसे पश्चाताप की अग्नि से निकालने की कोशिश कर रहा था वो तो उस अग्नि में कभी घुसा ही नहीं था।

सबसे बड़ा आघात तो मुझे तब लगा जब मुझे कुछ विश्वस्त सूत्रों से यह पता चला कि उसने मेरी नाबालिग नन्हीं-मुन्नी पुत्री का यौन-उत्पीड़न तक किया है। इतना नीच कर्म। क्षणिक क्रोध के आवेश में, पागलपन के दौरे में पिस्तौल के ट्रिगर दबाने की बात तो फिर भी किसी भाँति गले के नीचे उतार लूँ पर यौन-उत्पीड़न, वो भो नन्हीं बच्ची का, यह सोच, यह कर्म, यह गरल मैं किसी भी भाँति पचाने में समर्थ नहीं था। डेविड ने इस बात का मुझे कभी आभास तक न होने दिया था। मेरे क्रोध का लावा बढ़ रहा था। लपलपाती लपटें धरती का सीना फाड़ आकाश को जलाने पर उतारू हो रहीं थीं और उन्हीं लपलपाती लपटों में मैं डेविड को झुलसाना चाह रहा था। झुलसाना क्या सच पूछो तो जलाकर राख करना चाह रहा था, भस्म करना चाह रहा था।

शुरू में मुझे इस बात से आत्म-तुष्टि मिल रही थी कि जब डविड अपनी गल्ती से पछता रहा था तो मैं उसे फिर से मनुष्य बनने की क्रिया में सहारा दे ठीक ही कर रहा हूँ। उस खुशी से मैं भी अभिभूत हो रहा था।

डेविड को मार ड़ालने की अपनी प्रवृत्ति पर, अपने क्रोध पर काबू पाने की भावना से जुड़ने पर एक हरा-भरा सब्ज़-बाग दिखा था। सोचा था जो मैं कर रहा हूँ, ठीक कर रहा हूँ।

पर नहीं, वो सोच ठीक नहीं थी। ठीक है कि क्रोध के उबाल से उफनते हुए मार डालने की बात सोचना गलत है; मारना तो किसी भी तरह का समाधान न कभी रहा है और ना कभी होगा। हमें किसी की भी जान लेने का अधिकार है ही नहीं। पर हाँ, क्षमा का पात्र भी तो सुपात्र होना चाहिए। जो क्षमा के लायक ही नहीं है उसे कैसे क्षमा करूँ? डेविड अगर सच्चे दिल से क्षमा माँगता तो और बात थी। उसने तो बस संसार के बनाए हुए इस ईंट-पत्थरों के बाह्य कारावास से मुक्त होने के लिए क्षमा माँगने का ढोंग किया था। नहीं, मैं उसे क्षमा नहीं कर सकता। उसे तो अपने कर्म-फल भुगतने ही होंगे। और फिर मैं उसे क्षमा करने वाला होता ही कौन हूँ? उसे तो अब वो ही क्षमा कर सकते हैं जिनके प्रति उसने अन्याय किया था।

कविता की पंक्तियाँ मेरे मन-मस्तिष्क को बार-बार झिझोंड़ने लगीं। दिल के आकाश पर घने बादलों-सी छा-कर उमड़ने-घुमड़ने लगों। भावनाएँ हृदय-नदी का तट-बाँध तोड़ बहती ही चली गईं... बहती ही चली गईं। मैं अपने को न रोक सका। भावनाओं के सागर का निर्माण हो चुका था जो

ज्वार-भाटे-सा उद्वेलित होने लगा। सागर-मंथन में शब्द पर शब्द सतह पर उभरने लगे। भाव कलम की स्याही से चलते हुए पन्नों पर अंकित होने लगे -

'सौहार्द्रता, क्षमा क्या यह एक-तरफा है?
क्या नहीं होना चाहिए इसमें दोनों का सहयोग, सहमति
सदभावना, सौहार्द्रता, क्षमा बहुत ही उच्च गुण हैं
पर क्या इनकी कभी कोई सीमा नहीं?
क्या यह पात्र-कुपात्र दोनों के लिए समदर्शी हो?
क्या मार खाते रहना और क्षमा करते रहना
अन्याय पे अन्याय सहना कायरता के दायरे में ही तो
बँधे रहने की श्रेणी में नहीं आता?
एक हाथ से ताली बजती नहीं
दूसरा गाल सामने करने से बात बनती नहीं
कहीं न कहीं सीमा तो बाँधनी ही पड़ेगी
खलबला उठे थे द्वापर में कृष्ण भी
आतंकों की स्मृतिपटल पर जड़ी स्मृतियाँ तो छोड़ ही दीजिए
नानी-दादी द्वारा सुनाईं विभीषक चर्चाएँ तो दूर की बात
ये तो हैं हाल ही की आँखों देखी विभीषिकाएँ
सूख नहीं पाए धब्बे लहू के छिटके हुए शरीर पर
न हुईं अभी चीत्कारें शांत अभागे क्षत-विक्षत शरीरों की
सूखे नहीं हैं खून के फव्वारे अभी
अन्त्येष्टि क्रिया भी न कर पाए हम अभी
जीवित रगों का खौलता खून ठंडा नहीं हुआ अभी
कि तुम बात करने लगे सौहार्द्रता की!
हाँ, हम मानव हैं
सौहार्द्र, क्षमाशील, सदभावी हैं
पर बेवकूफ़, कायर नहीं
हाथ मिलाने के लिए हम हरदम अग्रणी हैं
पर उन्हीं हाथों को जो पेशावर हत्यारे नहीं
अंकवार करने स हमने मना किया नहीं कभी
पर पीठ में छुरा भोंकने वालों की पहचान है अभी
उनके कंधों से कंधा मिलाकर चलेंगे हम तभी
जब वो क्षमाशीलता, सौहार्द्रता, सदभावना का कद्रदान हो स्वयं भी।'

अगर डेविड सचमुच क्षमा चाहता है तो उसे इस योग्य बनना पड़ेगा। उसे अपने अन्तरमन में झाँक, अपने कुकृत्यों का एहसास कर, पश्चाताप करना पड़ेगा। जब तक वह यह नहीं करता, सिर्फ़ ऊपर ही ऊपर से ज़ुबानी जमा-खर्च कर क्षमा माँगने का कोई अर्थ ही नहीं। जिस दिन वह इस योग्य बन जाएगा क्षमा स्वयं ही उसके पास चली आएगी। उसे उसकी भीख नहीं माँगनी पड़ेगी। क्षमा तो पश्चाताप की सहधर्मिणी है। पश्चाताप ऊपर से नहीं अन्तरमन से प्रस्फुटित होना चाहिए और तब क्षमा स्वयं ही उसका अनुकरण करती हुई उसकी उस धारा में प्रवाहित हो समाहित हो जाएगी। दोनों का समन्वय अति आवश्यक है। जब तक डेविड इस तथ्य से, इस एहसास से अभिभूत हो स्वयं को क्षमा नहीं कर पाएगा सिर्फ़ मेरे क्षमा करने से ही क्या होगा? जिस क्षण उसके स्वयं का अन्तरमन उसे इस भावना का, क्षमा का असली एहसास करा देगा वह स्वयं ही मुक्त हो जाएगा।

स्नेह ठाकुर का रचना संसार

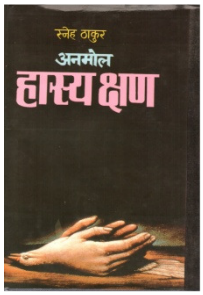

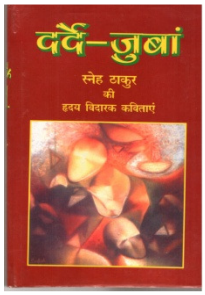

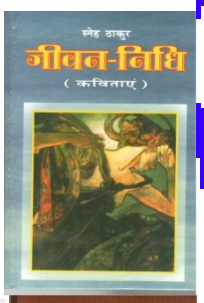

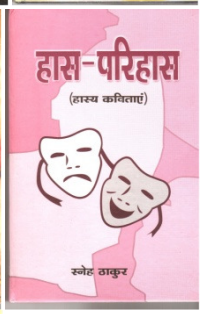

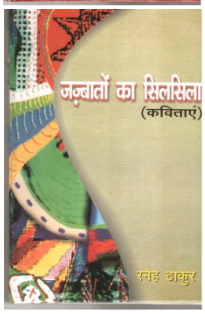

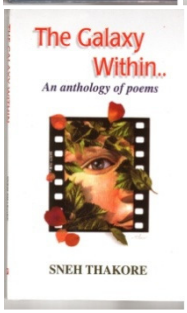

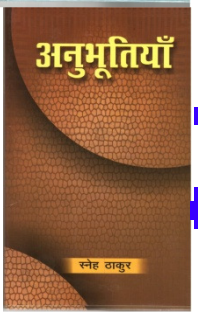

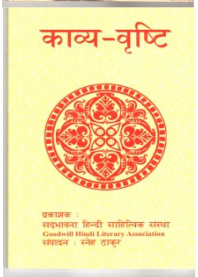

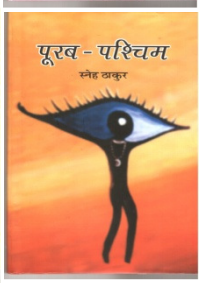

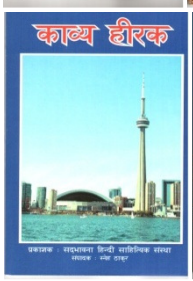

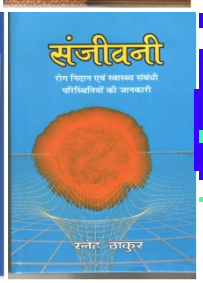

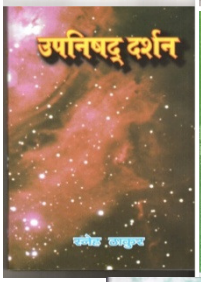

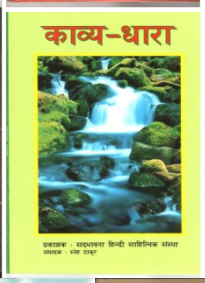

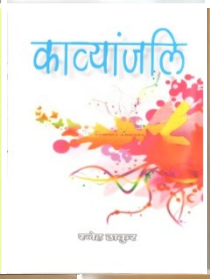

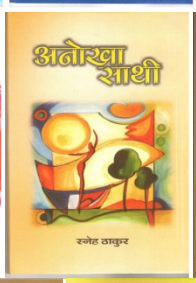

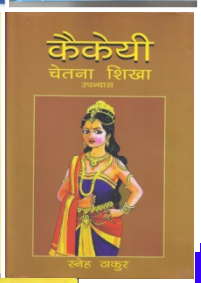

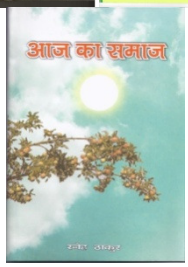

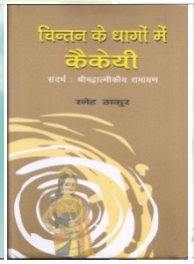

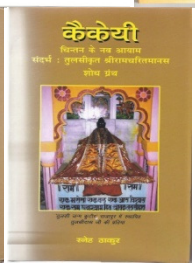

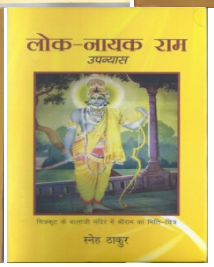

स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आत्म-गुंजन	(आध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन एवं संपादन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
बौछार	(संकलन एवं संपादन)
काव्य हीरक	(संकलन एवं संपादन)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख)
उपनिषद् दर्शन	(अध्यात्मिक)
काव्य-धारा	(संकलन एवं संपादन)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, राष्ट्रपति भवन पुस्तकालय में संग्रहित)
आज का समाज	(लेख-संग्रह)
चिन्तन के धागों में कैकेयी	
संदर्भ : श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण	(शोध-ग्रन्थ)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, द्वितीय संस्करण, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान)
कैकेयी : चिन्तन के नव आयाम	
संदर्भ : तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस	(शोध-ग्रन्थ)
लोक-नायक राम	(उपन्यास)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२
भारत
Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW
England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित